प्रभातफेरी

नरेन्द्र

प्रकाशगृह
कालाकाँकर (अवध)

प्रकाशक
प्रकाशगृह
कालाकाँकर (अवध)

प्रथम संस्करण
फरवरी, १९३९
मूल्य १।)

मुद्रक, श्री गोपीलाल दीक्षित,
दीक्षित प्रेस, इलाहाबाद

स्वर्गीया

बहन रामेश्वरी देवी

को

हम भूतल के अधिवासी भी
जब तब नभ को तक लेते हैं,
देख देख नभ के तारों को
अपनों की सुध कर लेते हैं।

इसीलिए जब कभी दृष्टि-पथ
पर आजाता है ध्रुवतारा,
बहन! मुझे भी अनायास ही
आजाता है ध्यान तुम्हारा!

निवेदन

'प्रभातफेरी' मे आपको जिस प्रभात का सगीत मिलेगा, वह मेरे कवि-जीवन, नवयौवन और मेरे मन में पहले-पहल अकुरित होने वाले आत्म-चिन्तन का प्रभात है। इस सगीत मे किसी सधे हुए गले का पका हुआ स्वर नहीं, और न इसमे छल-छिद्र से दूर, अबोध और दुधमुँहे बालक के स्वर का ही स्वाभाविक मिठास है। इस सगीत में उस अवस्था के नवयुवक का स्वर है, जब शैशव के बीत जाने पर न वह मधुरता या स्वाभाविकता ही रहती है जिसके कारण बालक की भूलों की ओर लोगों का ध्यान नहीं जाता, और न उस अनुभवी युवक की क्षमता ही, जो आत्मविश्वास से आलोचकों को चुनौती दे सके– 'सुरीले कठों का अपमान जगत में कर सकता है कौन ?' यह जिस अवस्था के नवयुवक का सगीत है, उस अवस्था के प्रति लोगों के हृदय में न शैशव के प्रति जैसी उदारता ही रहती है, और न वह आदरभाव ही जो सधे हुए सुरीले कठ के प्रति स्वाभाविक है।

जिस प्रभात का यह सगीत है, वह प्रभात भी तो कितना धुँधला है! और उसमें न रात की मोहमाया का अलसाया अधकार है, और न उग्र सत्य जैसा, दिन का प्रचड प्रकाश। अबोध सरल शैशव को आबनूस के रत्नजड़े पालने में सुख-निद्रा से सुलाने वाली रात और प्रचड मार्तंड को भी परास्त कर देने वाले दिन का जो प्रारभिक सधिकाल है, वही 'प्रभातफेरी' के कवि का प्रभात है, 'प्रभातफेरी' उसी प्रभात का सगीत है।

नई अप्रकाशित रचनाओं के अतिरिक्त, 'प्रभातफेरी' मे 'शूल-फूल' और 'कर्णफूल' से भी चुनी हुई रचनाए सगृहीत हैं। पिछली इन दो पुस्तकों

के नए संस्करण प्रकाशित न किए जावेंगे। इस प्रकार १९३२ से १९३५ तक की रचनाओं से चुनी हुई, और दो चार उसके बाद की भी, रचनाएं इस संग्रह में प्रकाशित की जा रही हैं।

पुस्तक के कवरपेज पर दिए गए, श्री असित कुमार हलधर द्वारा अंकित चित्र के लिए मैं इलाहाबाद म्यूनिसिपल म्यूज़ियम के अधिकारियों के प्रति कृतज्ञ हूं। चित्र के पक्षी की भाँति मेरी भी यह पहली उड़ान है। मैं चाहता हूं कि सत्य और सौंदर्य की खोज में निर्भीक होकर और ऊँचा उड़ सकूं, लेकिन जगद्धात्री पृथ्वी से विमुख हो, महत्वाकांक्षा के सूर्य तक पहुँचने की इच्छा से उड़ने वाले सम्पाती की भाँति नहीं।

इलाहाबाद
फरवरी २६, १९३९

नरेन्द्र

सूची

	कविता	पृष्ठ
१	प्रभातफेरी	१
२	मेरा वैभव	४
३	भावी संतति	६
४	बबूल	९
५	विज्ञान के प्रति	११
६	रूढ़िवाद	१२
७	कृषकों की अंतरात्मा कवि के प्रति	१३
८	प्रयाग	१५
९	इतिहास	१८
१०	चाँदी की तरी	२१
११	नाविक	२२
१२	नाविक के प्रति	२३
१३	तैराक वीर	२५
१४	भावी पत्नी	२७
१५	अवगुंठन	३२
१६	आज लजाओ मत, सुकुमारी !	३३
१७	आज और कल	३५
१८	प्रथम चुम्बन	३६
१९	तुम	३७
२०	अपराधी	३८
२१	स्वछंद-गीत	३९
२२	गर्वीला	४१
२३	स्वप्न	४३
२४	वसन्ती बाला	४६
२५	सपने में	४८
२६	चमेली	४९
२७	कर्णफूल	५०
२८	कोयल	५१
२९	किन्नरी के प्रति	५३
३०	नयन-भिखारी	५६
३१	पत्र	५७
३२	मिलन	५८
३३	प्रेम-नदी	५९
३४	बिजलीरानी	६१
३५	विदा	६२
३६	सपना	६५
३७	बन्धन	६७
३८	आलिङ्गन	६८
३९	पूनों की रात	६९
४०	जीवन के पल	७०
४१	आकुल प्राण	७१
४२	काला अतीत	७२
४३	मधुकर	७३
४४	मुसकान	७४
४५	सुधि	७५
४६	सतत प्रतीक्षा	७६
४७	अनन्त प्रतीक्षा	७७
४८	अलिदल	७९
४९	वसन्त की चातकी	८०
५०	संध्या	८२
५१	अब आते होंगे जीवनधन !	८३
५२	सावस	८५
५३	धीरज	८६
५४	आज न सोने दूँगी, बालम !	८७
५५	यौवन-बेला	८९

	कविता	पृष्ठ		कविता	पृष्ठ
५६	वर्षा-श्री	९०	६७	फुहार	११२
५७	प्रेम की बात	९२	६८	शूल-फूल	११३
५८	यौवन	९१	६९	आत्मा की कथा	११४
५९	शैलकुमारी	९४	७०	पापी	११६
६०	भिखारिन	९७	७१	मेरी भावना	११८
६१	वेश्या	९८	७२	यदि	११९
६२	कगाल	१००	७३	लहरी	१२०
६३	शिव-स्तुति	१०३	७४	याचना	१२१
६४	रुद्ररूप भारत	१०६	७५	मेरा उर	१२२
६५	चिता	१०७	७६	भीख	१२३
६६	जरा-चिन्तन	११०	७७	आह्वान	१२४

प्रभातफेरी

आओ, हथकड़िया तड़कादू, जागो रे नतशिर बन्दी!

उन निर्जीव शून्य श्वासों में
आज फूँक दू लो नवजीवन,
भरदू उनमें तूफानों का,
अगणित भूचालों का कंपन,

प्रलयवाहिनी हों, स्वतंत्र हों, तेरी ये साँसें बन्दी!

दो हों, चाहे एक साँस हो
जीवित हो, उल्लासभरी हो,
जीवन-चिह्न बनें ये बन्धन,
साँस-साँस में स्वाभिमान हो,

क्या साँसों की गिनती जीवन? सोचो तो भोले, बन्दी!

बन्दी सकल कर्म-कारण कर,
शिर नत, आँखें सूनेपन में!—
वृथा मुक्ति यों खोज रहे हो
सत्यभीत तुम शून्य गगन में!

अविनाशी की आशा मिथ्या, स्वयम् समर्थ बनो, बन्दी!

अपने सर्वसमर्थ हृदय को
भूल, शून्य में कर फैलाते,
याचक बनकर आसमान के
शक्तिमान को शीश नवाते,

अवनी अनल अनिल जल नभ के तुम ही अधिवासी, बन्दी!

जल ज्वाला भूकम्प तुम्हारे-
ही अतुलित बल के परिचायक,
आँधी औ' तूफ़ान तुम्हारे-
शक्तिमान श्वासों के वाहक,

हैं सत्तासूचक नभ-चुम्बी भूधर, ग्रह, उपग्रह, बन्दी !

कर प्रकाश बन्दी दीपक में
तम में तुमने किया उजाला,
जैसे बन को, वैसे मन को
फिर ईश्वर भी खोज निकाला,

सृजनहार के सृजनहार तुम, तुम हो प्रतिपालक, बन्दी !

संसृति के गृह में दीपक-सा
वह उपयोगी है पर नश्वर,
उसका तो जलना-बुझना भी
मानव की इच्छा पर निर्भर,

जीवन-क्रम में ईश्वर नश्वर, केवल तुम शाश्वत बन्दी !

जग है तुम हो, यहा नहीं वह,
हे आस्तिक ! तुम सत्य-हीन हो,
स्वत्त्व-हीन हो, दीन-हीन हो,
मन के भ्रम मे स्वयम् लीन हो,

अपने ही मन की माया मे मत भूलो, भोले बन्दी !

जन्म-मरण-भयभीत बन्धु क्यों ?
हैं ये तो जीवन, नवजीवन !
स्वर्ग तुम्हारी रुचिर कल्पना,
धर्म तुम्हारा ही प्रतिपादन !

तुम्हीं ध्येय हो जग-जीवन के, उठो, बढो, भूले बन्दी !

प्रभातफेरी

उठो उठो, ऐ सोते सागर !
नई सृष्टि को ले नव कंपन,
क्षीरसिन्धु भी, बन्धु, तुम्हीं में,
जिसमें स्थित अग-जग का कारण

विश्वाधार विष्णु के पालक, तुम्हीं अशेष शेष, बन्दी !

व्यक्तरूप में हो असीम तुम,
सृष्टिश्रेष्ठ ! तुममें असीम है,
निबल ! तुम्हारा बल तुममें है
ज्यों तम में जग-ज्योति लीन है,

उठो सूर्य-से चीर तिमिर को, उठो, उठो, नतशिर बन्दी !

जागो, पहचानो अपने को
मानव हो, समझो निज गौरव,
अन्तस्तल की आँखें खोलो
देखो निज अतुलित बल वैभव,

अहंकार औ' स्वाधिकार— दो पृथक् पृथक् पथ हैं, बन्दी !

[जून, १९३४

मेरा वैभव

मेरे वैभव का कहा अन्त !

मेरे उर की सुख-सुखमा से
हर्षित वसन्त, शोभित दिगन्त !

मेरे वैभव का कहा अन्त !

ऊषा-सन्ध्या मेरी छाया,
मुझसे लाली लेते पाटल,
मेरे गायन, कल-कूजन से
चञ्चल चिड़ियों की चहल-पहल !

मुझसे ले मीठी मुसकाने
खिलती हैं डालों में कलिया,
मुझसे मस्ती ले ले उठतीं
जल में लहरों की रँगरलिया !

हा, मुझसे हँसना सीख सीख
झुक झूम झूलते फूल फूल,
पी मेरी सौरभ-श्वास कभी
मधुकर जाते मधुपान भूल !

जब मेरी लघु मुसकान-रेख
अङ्कित होती नभ के मन में,
दो एक कलाए खिलीं, और
बस दूज उदय होती जग में !

मेरा वैभव

घुल मेरी मानस-लहरों में
पूनों आती ले हास सरस,
फिर फेर लिया यदि मुख मैंने
छिप गया इन्दु, आई मावस!

भर दिया शून्य को तारों से
फेंके जब मुट्ठी भर हीरे,
ज्यों ज्यों मेरी मुसकान बढ़ी,
शशि-कला बढ़ी धीरे धीरे!

मेरा साम्राज्य नापने को
मार्तण्ड नित्य बन माप-दण्ड,
दिखलाता रहता निशि-वासर
उस विशद् राज्य के खण्ड-खण्ड!

मेरी अखण्ड गौरव-गाथा
गाते हैं लहराते सागर,
निज कुशल करों से मारुत जब
घननाद-सदृश भरता है स्वर!

उत्तुग-शृङ्ग हिम-पर्वत के
हैं मेरे मुकुट-किरीट-सदृश,
तूफान ध्वजाएं फहराते
सरिताएं गातीं मेरा यश!

यों जल में, थल में, अम्बर में
फैला हू मैं बनकर अनन्त!

[नवम्बर, १९३५

भावी सन्तति

हम भविष्य के तिमिर-गर्भ में
—बल-सञ्चय-हित, बालारुण-से—
कुछ दिन अभी करेंगे शयन!

अनल-गर्भ है तिमिर-गर्भ यह
अनल-रूप में आएँगे हम,
सुनो, तुम्हारी परवशता के
शव को चिता जलाएँगे हम!

धनुषाकार अर्ध-रवि बनकर
बना क्षितिज की प्रत्यिञ्चा हम,
अरुण, अग्नि शावक बाणों से
क्षण में हरलेंगे भव का तम!

शर छू, जल जल जीर्ण तूलि-सी
लपट बनेगी वारिद-माला,
चढ़ लपटों के स्वर्णगरुड़ पर
फैलेगी जाग्रति की ज्वाला!

शमी-वृक्ष की छिपी अनल यों
होगी किंशुक-रूप अकुरित,—
सदियों की अन्तर्हित ज्वाला
पूर्ण क्रान्ति में तुरत अवतरित!

वह प्रभात होगा भविष्य का
अभी देश में कुछ दिन रैन!

भावी सन्तति

हम भविष्य के तिमिर-गर्भ में
बल-सञ्चय-हित बालारुण-से
कुछ दिन अभी करेंगे शयन !!

ज्वाला का क्या वर्ण, वर्ण है
बस सुवर्ण ही, साम्य-गान है,
तप्त-स्वर्ण की बनी देह यह,
कर्म, पूर्ण तप - अनुष्ठान है !

वर्णहीन असमान पतित को
उठा, शक्ति देंगे प्रलयङ्कर,
अनयन्त्रित शासन से पोषित
वैभव को हर भस्मभूत कर !

मेघाच्छादित विश्व व्योम से
विद्युत्-धारा मे, अपनी पर,
हम हरने आतङ्क, वज्र बन
उमड़ पड़ेंगे घन-गर्जन कर !

पर्वत के प्रतिध्वनित नाद-से
जय जय कर जय-घोष भयङ्कर,
फूट पड़ेंगे तड़क तड़ित-से
कम्पित कर अवनी औ' अम्बर !

वह प्रकाश होगा भविष्य का
अभी देश मे कुछ दिन रैन !

हम भविष्य के तिमिर गर्भ मे
बल सञ्चय हित बालारुण-से
कुछ दिन अभी करेंगे शयन !!

प्रभातफेरी

सिन्धु-शयन पर क्रुद्ध शम्भु के
वह्निनयन से हम अवतीरण,
शिव के पुत्र, रुद्र के सेवक,
शांति-क्रांति के हम अनुचर-गण !

दैत्यों का दुर्जेय शौर्य ले
देवों की ले अमृत मधुरिमा,
मानवता के साँचे मे ढल
बनी हमारी कुन्दन-प्रतिमा !

अवनि-व्योम की सन्धि-कोख को
कँपा, हिला दश भीत दिशाए,—
आवेंगे हम, जागें जिससे
जीवन की मृतप्राय शिराए !

होंगे हम अवतरित विश्व मे
सागर पर पर्वत के पवि-से,
परवशता के नैश तिमिर को
चीर, अनल के लोहित रवि-से !

वह प्रभात होगा भविष्य का
अभी देश में कुछ दिन रैन !

हम भविष्य के तिमिर-गर्भ में
बल-सञ्चय-हित बालारुण-से
कुछ दिन अभी करेंगे शयन !!

[जनवरी, १९३७

बबूल

मैं हूं एक समान अहर्निशि, एक रूप प्रतिवार !
मेरी जय-श्री—विश्व-विजय-श्री, यह काँटों का हार !

दो दिन के वसन्त में हँस कर
कहता मैं न, 'विश्व-श्री नश्वर !'
पल भर के पावस में रहकर,
कहता मैं न, 'विश्व दुख-सागर !'

सुख दुख एक समान मुझे सब, मुझे न भेद-विकार !

लाती मलियानिल कलि-किसलय
तरुओं के आँचल भर जाती,
आती फिर झञ्झा की बारी
आँखों में आँधी भर जाती,

मैं अपने अभाव में श्रीयुत, श्री-अभाव शृङ्गार !

कभी न बरसे सरस सुरभि-घन
मुझे न व्यापी पर जग-ज्वाला,
निर्गुण फूल फली काँटों की
विधि ने दी मुझको मणि-माला,

व्यङ्ग रूप यह वाम-विधाता का मुझको उपहार !

कंटकमय जीवन आजीवन
पर मैं निर्भय विश्वासी हूं,
हूं समर्थ, मैं सबल सनातन,
पर नित-नव-बल अभिलाषी हूं,

सबल बनूं, यदि बरसे काँटे नभ से शत-शत धार !

प्रभातफेरी

मै स्थितप्रज्ञ—विज्ञ पहचाने—
अपना जीवन-भार उठाए,
चाहे राशि राशि शूलों से
फिर फिर मेरा तन भरजाए,

मैं हू धीर वीर सन्यासी दृढ़ता ही आधार।

यहा नहीं बुलबुल बबूल मे,
यहा न मधुऋतु औ' मधुप्यारी,
यहा न सुरभित फूल, सरस फल,
यहा न डालें पल्लवधारी,

नही यहा छाया की माया, हैं दो मुक्त विचार।
मै हूं एक समान अहर्निश, एक रूप प्रतिवार॥

[मई, १६२

विज्ञान के प्रति

हे यथार्थ! हे सत्य सनातन!

बार बार रचता हूँ नभ में
साँझ सबेरे मानिक मंदिर,
तुम अपने पाषाण करों से
तोड़ डालते हो सब, निष्ठुर!
मेरे लिए स्वप्न भी अस्थिर!

हे यथार्थ! हे सत्य सनातन!
मन बहलाने को बुनता हूँ
मैं किरणों के ताने-बाने
बार बार तुम तार तार कर
छिन्न भिन्न कर देते हो सब
मेरे भाव बिना पहचाने!

हे यथार्थ! हे सत्य सनातन!
मैं असहाय खोजता हूँ जब
किसी शक्ति को दूर गगन में,
तुम कठोर स्वर में कहते हो
'मिथ्या है तेरी यह आशा
जग-जीवन में जीवन-रण में!'

हे यथार्थ! हे सत्य सनातन!
'श्रम अविरत पथ, फिर तम सागर',
बार बार क्यों मुझे सुनाते?
'मोक्ष, थके मन की अभिलाषा'
कुलिश कठोर शोर में रहते,
भीति भरे कानों में गाते!

हे यथार्थ! हे सत्य सनातन!

[अक्तूबर १९३४

रूढ़िवाद

निष्ठुर पाषाण-शिलाओं से निर्मित है दृढ गढ रूढिवाद !
जिससे टकरा सिर स्नेह, पा सका केवल चिर-लोकापवाद !

पाषाण-शिलाओं से टकरा ज्यों क्षण-भगुर बुद्‌बुद् समान
हो जाते हैं नित चिर-विलुप्त जाने कितने गति-रुद्ध प्राण !
पाषाण शिलाओं से टकरा हैं टूटे जाने कितने उर,
मिट जाते हैं, दीवारों पर कुछ दिन रह लोहू के निशान !

सदियों से बन्दी है जिसमे जीवन बन कर शाश्वत विषाद !
निष्ठुर पाषाण शिलाओं से निर्मित है दृढ गढ रूढिवाद !

यह मूर्त्तिमान जाग्रत मसान अरमान और इच्छाओं का,
यह कारागार, भार भू का, जिसको जग कहता है समाज,
है जीने का अधिकार जहा हमको क़िस्मत की मर्जी पर,
जड़ रूढिवाद के शव को जो जीवित कहता है, आह, आज !

पर, पागल कवि ! क्या इसे नष्ट कर पाएगा तेरा विवाद ?
निष्ठुर पाषाण-शिलाओ से निर्मित है दृढ गढ रूढिवाद !

पाषाण-शिलाओं से निर्मित यह रूढिवाद, जिसको अब तक
न डिगा पाई विधवाओं की भी करुणा-विगलित अश्रुधार,
छवि के उपवन में कुसुम-चयन करने वाले ये कवि के कर
क्या उसे नष्ट कर पाएँगे कर नित शिशुवत् मुष्टिक-प्रहार ?

कोमल-स्वर वीणा से कैसे हो वज्रपात या मेघनाद ?
निष्ठुर पाषाण-शिलाओ से निर्मित है दृढ गढ रूढिवाद !

[मार्च, १९३८

कृषकों की अन्तरात्मा : कवि के प्रति

तुम जग के प्रतिनिधि-प्रदीप हो, सकल विश्व के तुम सरताज !
तुम्हें प्यास क्यों अधर-सुधा की जब हम पानी को मोहताज ?
अब तक, कवि, तुम भूल न पाए फूल और कलियों की बातें
भटक रहे हैं हाथ पसारे जब हम दो दानों को आज ?

रुचिर कल्पना-निर्मित वे प्रासाद तुम्हें कैसे भाए ?
कहो, तुम्हारे हृदय-धाम में कैसे मधुर भाव आए ?
जब हम बन्धु तुम्हारे आश्रयहीन विलखते रोते हों
कहो, कहो, कवि, कैसे अब तक सरस गीत कथकर गाए ?

बहुत बज चुकी जर्जर वीणा, बहुत प्रेम का गान हुआ,
बहुत हो चुका रास-रग, कवि, बहुत दिनों मधुपान हुआ,
वे सब सपने की बातें थीं, जरा सत्य को अपनाओ,
बहुत दिनो तक हुआ न्याय का, और बहुत अपमान हुआ !

यहा विलखते लाल देख लो, और निरक्षर युवक कुमार,
वञ्चित व्यथित युवतिया देखो—कुम्हलाती कलिया सुकुमार !
जग को जो भोजन देते हों आज उन्हें भूखा देखो,
और दूसरी ओर देखलो धन-मद गौरव-मद व्यभिचार !

रोग-अविद्या के तुषार-हिम से मुरझा जाता शैशव,
नहीं पनपने पाता पीले पातों-सा यौवन-वैभव ?
दैन्य-दु:ख, ऋण भार, प्रवञ्चन, चिन्तन, बनती जीर्ण जरा,
फलना और फूलना कैसा, कारागार बना है भव !

प्रभातफेरी

दोष हमारा केवल इतना, हमको प्रिय शारीरिक श्रम,
हम समाज के सेवक जिनका पाप, सरलपन, भोलापन !
हम हैं बेज़बान खंगर—आधार - शिलाएं इस घर की,
सब दुनिया हम सी ही होगी, ठगे गए इस भ्रम से हम !

अभी समय है शीतल जल दो, हमें न हो शोणित-अनुराग,
कभी न बुझ पाएगी जल से ऐसी कठिन जलेगी आग
मेघ तुम्हारे दूत, कहो उनसे कुछ जल-कन बरसादें,
उठे न इस सतप्त कंठ से कहीं नाश की लपटें जाग !

तुम्हें ज्ञात वे मर्म तिमिर के जिन्हें न देख सका दिनकर,
मानव-उर का तिमिर हरो, कवि, दिव्य ज्योति से जीवन भर !
तुम्हें ज्ञात वे गान गहन के जिन्हें न खोज सका मारुत,
गाओ कवि वह गान न्याय का गूँज उठें दिग्-भू-अम्बर !

भोगी की तम-निद्रा टूटे, योगी की समाधि हो क्षय,
शंख-नाद मे घोषित हो, कवि, एक बार न्यायी की जय !
त्याग-तप्त संतप्त अस्थियों का तुम विद्युत्-वज्र बना
उमड़ा दो निज ज्योति-ज्वाल से, वीर घोष से महाप्रलय !

[अक्तूबर, १९३५

प्रयाग

मैं बन्दी वन्दी मधुप, गीत यह गुंजित मम स्नेहानुराग,
संगम की गोदी में पोषित शोभित तू शतदलयुत, प्रयाग !
विधि की बाँहें गंगा-यमुना तेरे सुवक्ष पर कंठ-हार
लहराती आतीं गिरि-पथ से लहरों में भर शोभा अपार !

देखा करता हूं गगा में उगता गुलाब-सा अरुण प्रात
यमुना की नीली लहरों में नहला तन, उतरती नित्य रात !
गगा-यमुना की लहरों मे, कण कण में मणि नयनाभिराम
बिखरा देती है साँझ हुए नारगी-रँग की शान्त शाम !

तेरे प्रसाद के लिए, तीर्थ ! आते थे दानी हर्ष जहा,
पल्लव के रुचिर किरीट पहन आता अब भी ऋतुराज वहा,
कर दैन्य-दुःख-हेमन्त अन्त, वैभव से भर सब शुष्क वृन्त
हर साल हर्ष के ही समान सुख-हर्ष-पुष्प लाता वसन्त !

स्वर्णिम मयूर-से नृत्य किया करते उपवन में गोल्डमोहर,
कुहका करती पिक छिप छिप कर तरुओं में रत प्रत्येक प्रहर !
भर जाती मीठी सौरभ से कड़वे नीमों की डाल डाल
चलदल पर लद जाते असख्य नवदल-प्रवाल के जाल लाल !

'मधु आया', कहते हँस प्रसून, पल्लव 'हा' कह कह हिल जाते,
आलिंगन भर, मधु-गन्ध-भरी बहती समीर जब दिन आते !
शुचि, स्वच्छ और चौड़ी सडकों के हरे-भरे तेरे घर में
सब को सुख से भर देता है ऋतुपति पल भर के अन्तर में !

मधु के दिन पर कितने दिन के ! आतप में तप जल जाता सब !
तू सिखलाता कैसे केवल पल भर का है जग का वैभव !
इस स्वर्ण-परीक्षा से दीक्षा ले ज्ञानी बन मन-नीरजात
शीतल हो जाता आती है जब सावन की सुख-सरस रात !

जब रहा सहा दुख धुल जाता, मन शुभ्र शरद-सा खिलजाता—
यों दीप-मालिका में आलोकित कर पथ शुभ्र शरद आता !
ऋतुओं का पहिया इसी तरह घूमा करता प्रतिवर्ष यहां,
तेरे प्रसाद के लिए, तीर्थ ! आते थे दानी हर्ष जहां !

खुसरू का बाग़ सिखाता है, है धूप-छाँह-सी यह माया
वृक्षों के नीचे लिखजाती है यों ही नित चञ्चल छाया !
वह दुर्ग !—जहां उस शान्ति-स्तम्भ में मूर्तिमान अब तक अशोक,
था गर्व कभी, पर आज जगाता है उर उर में क्षोभ-शोक !

तू सीख त्याग, तू सीख प्रेम, यम-नियम सीख तू अज्ञानी—
क्या पत्थर पर अब तक अंकित यह दया-द्रवित कोमल वाणी !
जिसमें बोले होंगे गद्गद् वे शान्ति-स्नेह के अभिलाषी
दृग भर भर शोकाकुल अशोक, सम्राट, भिक्षु औ' सन्यासी !

उस पत्थर पर अंकित है क्या ? क्या त्याग शान्ति तप की वाणी ?
जिससे सीखें जीवन-संयम, सर्वत्र शान्ति, सब अज्ञानी !
सन्देश शान्ति का ही होगा पर अब जो कुछ वह लाचारी
बन्दी बलहीन गुलामों की जड़मूक बेबसी बेचारी !

दुख भी हलका हो जाता है अब देख देख परिवर्त्तन-क्रम,
फिर कभी सोचने लगता हूं, यह जीवन सुख-दुख का संगम !
बेबसी सदा की नहीं, सदा की नहीं गुलामी भी मेरी,
रे काल-क्रूर ! क्या कभी नहीं फिर करवट बदलेगी तेरी ?

यह जीवन चञ्चल छाया है, बदला करता प्रतिपल करवट,
मेरे प्रयाग की छाया में पर अब तक जीवित अक्षयवट !
क्या इसके अजर पत्र पर चढ जीवन जीतेगा महाप्रलय ?
कह, जीवन में क्षमता है यदि तो तम से हो प्रकाश निर्भय !

मैं भी फिर नित निर्भय खोजूं शाश्वत प्रकाश अक्षय जीवन,
निर्भय गाऊं, मै शान्त करू इस मृत्यु-भीत जग का क्रन्दन !
है नए जन्म का नाम मृत्यु, है नई शक्ति का नाम ह्रास,
है आदि अन्त का, अन्त आदि का यों सब दिन क्रम-बद्ध ग्रास !

प्यारे प्रयाग ! तेरे उर मे ही था मम अन्तर-स्वर निकला,
था कंठ खुला, काँटा निकला, स्वर शुद्ध हुआ, कवि-हृदय मिला,
कवि हृदय मिला, मन-मुकुल खिला, अर्पित है जो श्रीचरणों में,
पर हो न सकेगा अभिनन्दन मेरे इन कृत्रिम वर्णों में !

ये कृत्रिम, तू सत्-प्रकृति-रूप, हे पूर्ण पुरातन तीर्थराज !
क्षमता दे जिससे कर पाऊं, तेरा अनन्त गुणगान आज !
दे शुभाशीस, हे पुण्यमाम ! वाणी कल्याणी हो प्रकाम,
स्वीकृत हो अब श्रीचरणों में वन्दी का यह अन्तिम प्रणाम !

तेरे चरणों में शीश धरे आए होंगे कितने नरेन्द्र,
कितने ही आए चले गए कुछ दिन रह अभिमानी महेन्द्र !
मै भी नरेन्द्र, पर इन्द्र नहीं, तेरा वन्दी हू, तीर्थराज !
क्षमता दे जिससे कर पाऊ तेरा अनन्त गुण-गान आज !!

[दिसम्बर, १९३४

इतिहास

इतिहास सिखाता है कैसे गिर जाते हैं उठने वाले !
इतिहास सिखाता है कैसे उठ जाते हैं गिरने वाले !

इतिहास सभ्यता का साथी,
इतिहास राष्ट्र का रक्त-प्राण,
ऊँचे नीचे दुर्गम मग में
बढने वालों का अमर गान,

इतिहास सिखाता है कैसे बढ चलते हैं बढने वाले !

यह जीवन और मृत्यु की नित—
संघर्ष-कहानी का पुराण,
जीवन अनन्त, जीवन अजेय,
इसका जीता-जगता प्रमाण,

इतिहास सिखाता है कैसे तू अजर, अमर, जीने वाले !

ग्रस लेते हैं, पर क्षण भर को
भूकम्प, वह्नि, भूखे सागर,
वे यहा नष्ट करते निवास
हम वहा बसाते नए नगर,

इतिहास सिखाता है कैसे जी उठते हैं मरने वाले !

मय, मिस्र और प्राचीन चीन
सब लीन हुए कालान्तर में,
यूनान नहीं, वह रोम नहीं,
डूबा भारत भी सागर में,

पर नई सभ्यता, नए नगर, नग-मे जगते जगने वाले !

इतिहास

जग-जीवन का कुछ ह्रास नहीं
झरते प्रसून, मृदु फल लगते,
आने वालों के लिए नित्य
पद-चिह्न पथिक के पथ बनते,

अब उदय-अस्त फिर अस्त-उदय, यों जीवन-क्रम, जीने वाले !

अवतार, मसीहा, पैग़म्बर
हैं उन तारों से अलग अलग,
जो उदित अस्त होते रहते
ज्योतित करते जग-जीवन-मग

ध्रुव-सा शाश्वत जीवन-प्रदीप सब दिन जलता, जलने वाले !

जग जीवन की जलती मशाल
उस कर से इस कर में आती,
आँधी आए, तूफान बहे,
वह कभी नहीं बुझने पाती,

मानवता का नित नव-विकास-पथ दिखलाती, चलने वाले !

जब महाप्रलय अतुलित बल से
ग्रसने आती ब्रह्माण्ड सकल,
जीवित रहता जीवन-प्रसून,
वाहन बनता लघु अक्षय-दल,

लघु दल के बल पर जीवित नित जग-जीवन, ओ मिटने वाले !

उत्साहित होता वर्तमान
सुन सुन दीक्षा मन्त्रोच्चारण,
इतिहास खोलता है सब दिन
छू छू भविष्य-शिशु के लोचन,

इतिहास सिखाता है कैसे बन जाते हम आँखों वाले !

प्रभातफेरी

हैं रवि-शशि इसके माप-दण्ड
विज्ञान-ज्ञान के हैं लोचन,
मानस-सागर की लहरों में
हैं अमर काव्य औ' षट्दर्शन,

अम्बुधि मे रत्न छिपे हैं पर पाते मन्थन करने वाले।

उपमाएं सीमित यह असीम,
अविरत विराट परिवर्तन क्रम,
जिसमें जलने बुझने जलने-
का शतशः रवि करते उपक्रम

जलते रहते बुझते रहते पर जलते फिर बुझने वाले।
इतिहास सिखाता है कैसे उठ जाते हैं गिरने वाले॥

[नवम्बर, १९३५

चाँदी की तरी

चीरती तम-सिन्धु की मजधार को नय्या चली लो।
पञ्चमी के चाँद-सी, विश्वास की असि-धार-सी है,
दूज से दो दिन बड़ी बस, पर्वतों से होड़ लेती,
श्याम घन को चीर, बढती छोड विद्युत स्फार सी है।

विघ्न-बाधाए कहा ससार में मेरी तरी को ?
व्योम-से निस्सीम सागर बीच निर्भय छोड़ दी है !
वक्र शशि का रूप पाया, है ग्रसा जाना असम्भव,
यह रजत जीवन-तरी है, नित्य निश्चय बढ रही है !

हस के लघु पख-सी हलकी, चटुल अति मीन जैसी,
प्रेरणा-सी तीव्रगामी पूर्ण बनने को चली है,
डूबने का भय नहीं जब अटल निश्चय ध्रुव बनाया,
आँधियों की गोदियों में ही सदा अब तक पली है।

भूख ले भूखी प्रलय की भँवर भी आए हज़ारों,
उमड़ सातों सिन्धु गरजें, आज नौका बढ चली है,
ह्वेल-सी लहरें सहस्र प्रहार करने सतत स्वागत,
तिमिर-पट पर अमिट जीवन-ज्योति रेखा खिंच रही है।

[जून, १९३४

नाविक

तू ही नौका,
तू ही नाविक,
तू ही है पतवार,
हे जीवन-खेवनहार !
लहरों के उत्थान-पतन पर,
चल सहर्ष उठ उठ गिर-गिर कर,
उठ कर, गिर कर बल-सचय कर,
सिखलाती यों चपल तरी को
जग-जीवन-मजधार !
हे जीवन-खेवनहार !
तमसा-निशा, सघन घन छाए,
तम ने दश-दिशि पुलिन डुबाए,
तू समर्थ है, बन विश्वासी,
ईश्वर को अपने धन्धे हैं,
तेरी व्यर्थ पुकार !
हे जीवन खेवनहार !
शक्तिमान नाविक साहस कर,
मन का विघ्न-विकार-तिमिर हर,
पथ प्रशस्त कर, आलोकित कर,
रोम रोम में अमर लगन के
अक्षय दीपक-ज्वार !
हे जीवन-खेवनहार !
ज्योतिर्मय तू, तेजपुञ्ज तू,
ग्रह-उपग्रह सब का स्वामी तू,
हो प्रकाश कह भर दे यदि तू,
सृजनहार के सृजनहार हे,
तू ही जगदाधार !
हे जीवन-खेवनहार !

[जून, १९३४

नाविक के प्रति

साहस कर, नाविक एकाकी !

गर्वित उन्नत गिरि के समान
बढ़ती ही आती है तरङ्ग,
लोहू के प्यासे अहिदल सी
भूखे विनाश की-सी उमङ्ग,

पर धीरज धर निज नौका खे,
तू अजर अमर, तू अविनाशी !
साहस कर, नाविक एकाकी !

हिल उठे गगन के ओर-छोर,
बढ़ती मद में डग मग हिलोर,
गिरि शृङ्ग लाँघ, सब तोड़ बाँध
करती नभ में उन्माद रोर !

सुन सम्हल, धीर धर आगे बढ़,
आगे बढ़ने के अभिलाषी !
साहस कर, नाविक एकाकी !

भीषण है झंझा का प्रकोप,
बढ़ती बल से पर्वत उखाड़,
भयभीत गगन मे भाग चले
डर से डकराते-से पहाड़,

शिशु से अपने विश्वासों को
चिपका ले उर से, विश्वासी !
साहस कर, नाविक एकाकी !

प्रभातफेरी

डर से थर थर काँपी धरती,
ले, उठी और हिल्लोल लोल,
दृढ रहे आज नौका तेरी
चाहे दिग्मण्डल जाय डोल,

जी भर खारी पानी पीले
तेरी आकांक्षा चिर-प्यासी।
साहस कर, नाविक एकाकी।

[दिसम्बर, १६३२

तैराक वीर

चढती जमुना की धारा में,
लो, कूद गया तैराक वीर।
कायर ही शका करते हैं,
उसने कब सोचा कहा तीर!

नागिन-सी प्रलयङ्कर लहरें
उठती हैं डसने आसमान,
सब स्वयम् निगलने को बढतीं,
करतीं भीषण रण घमासान!

सग्राम-सिन्धु भर अणु-अणु में
बढती आतीं लहरें अधीर।

दिग्मण्डल थर् थर् भयकातर,
लहरों पर फेनों के पहाड़,
वे उसे निगलने को धाईं
अगणित भीषण मुख फाड़ फाड़,

पर भय कैसा, चिन्ता कैसी,
डर से डरता है कौन धीर।

आती लहरें मुख फाड़ फाड
करने वक्षस्थल पर प्रहार
वह बढता अङ्क-मिलन करने
हँसमुख, निर्भय, बाँहें पसार,

टकरा कर लौट लौट जाता
भयभीत विजित-सा सरित-नीर।

प्रभातफेरी

गुँथ गई भँवर अब पहनाने
उसको जय की अहिदल-माला,
माला के अहिदल भर लाए
नवजीवन औ' जय का प्याला,

तैराक वीर अब पार गया,
मजधार बीच मिल गया तीर !

मजधार बीच, हा, भँवर बीच
वह पार गया, मिल गया कूल,
लहरों की सूनी लतिकाएं
हैं खोज रहीं निज स्वर्णफूल ?

पर फूल कहा ?—गाते मर्मर
नित विकल नीर, आकुल समीर !

संग्राम समाप्त हुआ, उसके
जय-गान करे उठ उठ हिलोर,
क्षीराम्बुधि में नीराम्बुधि तज
उड़ गया हंस निज पंख खोल,

क्या विश्व-सिन्धु-विजयी विवेक
पहचान न लेता नीर-क्षीर ?

[जुलाई १९३४

भावी पत्नी

आज न जाने किन चरणों से
प्राची ने जावक-श्री ली थी ?
किसकी दाड़िम-सी एड़ी को
देख आज ऊषा हँस दी थी ?

किसके स्वागत-गीत गा रहे
हैं खग गुंजित कर बन-कानन ?
घोषित करते हर्ष, शिखी क्यों
नृत्य-निरत हो बिन सावन घन ?

बिन वसन्त सूने रसाल पर
कुहुक उठी क्यों कोयल काली ?
शुष्क वृन्त पुष्पित, क्यों पल में
हुई पल्लवित डाली डाली ?

किसके पद-नख-नक्षत्रों को
देख आज धुँधले नभ-तारक ?
मौन हो गया स्वाति-बूँद बिन
किसे देखकर चंचल चातक ?

कैसे कर्कश काग-कंठ में
आज आ गई मीठी भाषा ?
दिला गया वह आज सवेरे
किसके आने की प्रिय आशा ?

प्रभातफेरी

आयेगी वह कौन लाज-सी
आज स्वर्णहंसों के रथ में?
किसके लिए आज प्राची ने
बिछा दिए हैं पाटल पथ में?

कौन, कौन, वह, स्वप्नागन्तुक,
जिसके पग-पायल की रुन-झुन
बजी आज मेरे अन्तर मे,
हूं अधीर जिसकी पगध्वनि सुन?

कहो, कौन है वह दूरागत,
मुखरित जिसके भावी नूपुर,
जिसकी चरण-चाप सुन चचल
चित, सुख-विह्वल अभिलाषी उर?

अरे, कौन वह निपट अपरिचित
खोल रही अन्तर-पट मेरे?
आती अर्ध-प्रगट सपने-सी
अलकों में शशि-आनन घेरे!

लिए एक कर मे गृह-दीपक
और दूसरे में मगल-घट,
कौन अतिथि-सी आती मेरे
उर के प्रतिपल अधिक सन्निकट?

नित्य निकट आता आगन्तुक
अरुणाभा में साँझ-सकारे,
श्याम-सुकेशी दीप-शिखा-सा
नारी-रूप अनूप सँवारे!

क्षीर-सिन्धु के लहर-हिंडोलों
मे बीता जिसका बालपन,

भावी पत्नी

नन्दनवन की कलिकाओं में
खिला अखिल जिसका नव यौवन

अब तक क्यों न समझ पाया मैं,
थी किसकी जगमें छवि-छाया ?
मुझे आज भावी पत्नी का
मधुर ध्यान क्षण भर को आया !

खुला आज सहसा उर-शतदल,
आयेगी वह कौन मधुकरी ?
मेरे मन-मन्दिर में बसने
सुन्दर सलज सुशील सहचरी ?

* * *

जब तुम पहले-पहल लाज का
घूँघट जरा खोलने दोगी,
उलझ जायँगे चारों लोचन,
मिलन निशा युग-युग की होगी !

सम्मुख बैठ, सुमुखि, कल्पों तक
एक दूसरे को देखेंगे,
लोचन होंगे कभी सिन्धु-से,
कभी सिन्धु में मीन बनेंगे

कभी गहन निस्सीम व्योम-से,
थाह-विहीन बनेंगे लोचन,
उसी व्योम में विचरेंगे फिर
भूल भेद-भ्रम, बन खग-खजन !

नहीं जानता कौन, कहा तुम,
अयि भावी सहचरी अपरिचित ?
किन्तु, सुमुखि, तुम सोच समझ कर
करना पल्लव-पाणि समर्पित !

कठिन कर्म है, प्रिय, यह जीवन,
और नहीं आँखों में ही जग,
हमे पार करना होगा नित
इस जग-जीवन का दुर्गम मग,

कैसे कह दू मार्ग सुगम है,
इस गिरि-पथ में गिरना होगा,
गिरकर उठना, उठकर गिरना,
फिर उठ-उठकर चलना होगा!

एक बार पर पाणिग्रहण कर
जीवन-पथ में साथ बढेंगे,
एक दूसरे के बल पर, प्रिय,
गिर-गिरकर भी साथ उठेंगे!

जब तुम थककर कभी कहोगी,
'श्रान्ति हरूँगी अब जीवनधन!'
तुम्हें प्यार से भर बाहों मे
अंक लगा लूँगा, कोमल-तन!

सरल स्नेह विश्वास सत्य की
तुम शुचि अकलुष दीप-शिखा बन
गृह को सुख-सुखमामय करना
ज्योति-प्रीति से भर घर आँगन!

सुमुखि, शत्रु भी हैं जीवन में,
प्रमुख शत्रु सन्देह अकारण,
किन्तु क्षमा, विश्वास, प्रेम से
कर लेंगे हम विपति-निवारण!

दैन्य-दुःख के कारण भी यह,
जीवन-पथ दारुण बन जाता,

पर वह दुख तो छाया छल-सा
मिटता रहता, आता जाता !

प्राण, प्रेम के क्षीर-सिन्धु में
नहीं दैन्य-दुख का खारापन,
थोड़ेसे , सन्तोष त्याग से
सुखमय बन जाता है जीवन !

पहना कवच स्वर्ण किरणों का,
तुम्हीं युद्ध को विदा करोगी,
साँझ हुए फिर श्रान्त सूर्य को
रजनी बनकर आश्रम दोगी !

हम जीवन के युद्ध क्षेत्र में
नित्य निरत रह साथ रहेंगे,
कभी कभी फिर प्रेम कलह से
प्रीति पुरानी नई करेंगे !

[नवम्बर, १९२९

अवगुंठन

खोलो, अवगुंठन खोलो!

प्यासे नयन भ्रमर से आकुल,
कमलनयनि! दर्शन को व्याकुल,
अधर अधीर मधुर चुम्बन को,
श्रवन तृषित कोकिल-कूजन को,

बोलो, मधुमयि, कुछ बोलो!
खोलो, अवगुंठन खोलो!

रोम रोम जाग्रत, उर कम्पित,
प्राण विकल परितप्त सशंकित,
विश्व अचेतन स्तब्ध विमूर्छित
अंग अंग पुलकित औ' प्रेरित

स्नेहाश्रय दो, उर खोलो!
खोलो, अवगुंठन खोलो!

[सितम्बर १९३२

आज लजाओ मत, सुकुमारी !

आज लजाओ मत, सुकुमारी !

लाज-लजीली तरल लालिमा
उमड़ेगी जब मुख-मण्डल पर
देखो, अरुणोदय से पहले
रँग दोगी प्राची का अम्बर,

छोड़ो लाज आज तो प्यारी !

अभी रात है, चुम्बन में मधु,
यौवन में मद है, कोमलतन !
तरुण अरुण अगणित प्रभात, प्रिय,
मूँदे हैं मदमाते लोचन,

मूँदे रहो नयन, सुकुमारी !

स्तब्ध निशा है, सुप्त सकल जग,
बेसुध है मदमत्त समीरण,
अङ्ग-राग से गध-अध जग
सुरभित चन्दन-चर्चित यौवन,

अग-जग फैली सुरभि तुम्हारी !

बेसुध ढुलकी पत्रावलि की
सघन ओट है, प्राणपियारी !
किंशुक के वन में सोई है
सग अरुण के उषाकुमारी

आज सुप्त है संसृति सारी !

प्रभातफेरी

पियें अभी मधुराधर चुम्बन,
गात गात गूँथें आलिङ्गन,
सुने अभी अभिलाषी अन्तर
मृदुल उरोजों का मृदु कम्पन,

कुमुद-हृदय खोलो शशि-प्यारी
आज लजाओ मत सुकुमारी !

[दिसम्बर, १९३३

आज और कल

आज करूं क्यों कल से विनिमय ?

कल जाने कैसी होगी कल,
कल कैसी प्यासे यौवन मे,
—कल तुम कुसुम कली लाओगी
आज खिले हैं उपवन मन में,

रोम रोम में है परिमल लय !

साँस साँस में सौरभ, परिमल,
प्रेम-मिलन ही मधुऋतु, मधुवन,
रोम रोम में, पुलक पुलक मे
खिल खिल उठते अगणित उपवन,

मिलते जब वक्षस्थल नववय !

खिली चमेली की डालों-सी
बाँहों में बन्दी पुलकित तन,
आठों याम रहे बन्दी यों
हो जीवित जयमाला बन्धन,

बन्दी को बन्धन ही में जय !
आज करू क्यों कल से विनिमय ?

[दिसम्बर, १९५२

प्रथम चुम्बन

भरदी रोली से मांग प्रथम चुम्बन में!
बीती बातों में रात, हुआ फिर प्रात प्रथम चुम्बन में!

सौरभ बन मिलन स्वप्न मेरे उलझे प्रिय की अलकों में,
युग युग की अपलक चाह मुँद गई सौरभ-श्लथ पलकों में,
पुलकों में आए प्राण, बस गए कल्प एक लघु क्षण में!

केशर-शर बरसा, रग अंग, ले पिचकारी कचन की
थी वातायन के पास खड़ी हँसती ऊषा यौवन की;
छींटों से जगा प्रभात चेतना का, मुग्धा के मन में!

फिर रंग-गुलाल-भरी आँधी उमड़ी सहसा अतर में
घुमड़ी कुछ, फिर उमड़ी जैसे उड़ गई सहज पल भर में,
थी हुई लाज से लाल बाल, जल उठे प्रदीप श्रवन में!

फागुन-गुन गा प्राणों की पिक कुहुकी यौवन-मधुबन में,
था आत्म-समर्पण और विजय का क्षण किसके जीवन में?
मैं भुज-बधन में बाँध किसे बँध गया स्वयम् बधन में?

[सितम्बर, १९३८

तुम

प्रिय, मधुराधर की सुधा पिला
कितने दुख भुला चुकी हो तुम !

मुरझाए प्यासे अधरों पर
धीरे से धर सुकुमार अधर,
फिर इन पीताभ कपोलों पर
रख मृदुल गुलाबी कोमल कर—

बहला मधु पिला चुकी हो तुम !

दुलरा भव-भार-भरा मानस
कर नई लालसा से सालस,
नयनों की श्यामल माया में,
काया की कञ्चन छाया में,

सहला तन, सुला चुकी हो तुम !

सहसा दामिनि-सी हँस, मोहनि !
तुम हँसा चुकी हो घन-सा मन,
फिर रूठ हठीली बन, सुन्दर !
मानिनि बन सुख की शय्या पर,

हँसते को रुला चुकी हो तुम !

प्रिय, मधुराधर की सुधा पिला
कितने दुख भुला चुकी हो तुम !

[नवम्बर, १९३४

अपराधी

मेरा बस इतना दोष हुआ
अभिलाषा आई ओठों पर,
बोलो, क्यों इतना रोष किया,
जो छाई रिस भ्रू-भङ्गों पर ?

हूं दण्डनीय, स्वीकार मुझे,
करलो बन्दी भुज-बन्धन मे,
चुप करदो चञ्चल अधरों को
बस एक अचेतन चुम्बन मे ।

[दिसम्बर, १९३४

स्वच्छन्द-गीत

बाले ! मुझे तो प्रेम का प्रिय पथ भाया ।
रुचिकर नहीं इस प्रेम-मदिर मे ठहरना, प्राणधन !
मुझको विचरना ही सुखद है
प्रेम का प्रिय पंथ भाया !

है सुख यहा, सुखमा यहा,
है सुरभि फूलों में, निशा में चाँदनी है,
अभिनय सतत अभिनव,
खिले हैं प्रात पाटल-से,
कनक की सुखमयी सन्ध्या बनी है ?

सब कुछ यहा, पर है नहीं
विश्राम, सुख के इस मदन में,
सुरभि है पर भ्रान्ति भी है
प्रेम के मृग-रूप मन मे,
बहुत दिन, प्रिय, रोक पाती है नही
उसको सुशीतल प्रेम-छाया !
बाले, मुझे तो प्रेम का प्रिय पथ भाया !

प्रेम से ही प्रेम केवल,
विश्व के ये रूप, साधन-मात्र हैं सब,
प्याले बने हैं हम सभी, पीते स्वयम् सुख-सार आसव ।

नित्य-नूतन नयन-प्याले, किन्तु आसव एक-सा है,
नित्य-नूतन नयन-प्यालो से जिसे मन पी रहा है,
सब दिन, कहो, कैसे लुभाए एक दिन के फूल-प्याले की
सजीली मोहमाया !
बाले ! मुझे तो प्रेम का प्रिय-पथ भाया !

प्रभातफेरी

प्रेम का प्रिय पंथ मेरा, पथ है तो पथ में चलना सदा है,
विश्राम कैसे लू, प्रिये, जब भाग्य में ही भूलना,
फिर खोजते रहना बदा है ?

शाप नारद को मिला जो, आह, मुझको शाप है वह,
प्राण, परवश शापवश मैं डोलता हिम-ताप-दुख सह,
सोच लो पहले, प्रिये, यदि प्रेम करना हो मुझे,
मैं प्रेम में मधुशाप लाया !
बाले ! मुझे तो प्रेम का प्रिय पंथ भाया !

सुधि-सारिका का है बसेरा, प्राणधन, मेरा हृदय सुकुमार सुन्दर
प्रेम-स्वप्नों की सुनहली तीलियों से है बना पिंजड़ा मनोहर !
मेरी मधुर मैना सुनाती है नए नित गीत गाकर !

एकान्त में सुन सुन सुरीले गान मन पुलकित निरन्तर !
आओ, प्रिये ! कुछ देर सुनलो, सारिका से सीख, लिखकर
प्रीति के कुछ गीत लाया !
बाले ! मुझे तो प्रेम का प्रिय पंथ भाया !!

[मई. १९३४

गर्वीला

है गर्व तुम्हें यदि अपने आकर्षण पर,
तो गर्व मुझे भी अपने प्रेमी मन पर !
है शक्ति तुम्हारी, मोहनि, सम्मोहन में,
मेरी भी शक्ति भक्ति में, शील, सहन में !
साम्राज्य तुम्हारा विषद्,
किन्तु है स्वप्न-राज्य मेरा भी,
अभिमान-मान तुम में हैं तो
सम्मान-मान मुझमें भी !
रत्नालोकित आभाभूषित
उस स्वप्न-देश का शासक,
मैं ही हूं उसका सृजनहार,
सम्राट् और प्रतिपालक !
मेरी इन कुशल अँगुलियों पर
शत् स्वप्न-दूत नित नर्तित,
प्रतिपल मेरी इच्छाओं पर
करते शत विश्व विनिर्मित !
है सौर-राज्य से विषद् महत्
यह स्वप्न-राज्य मेरा भी,
अभिमान-मान तुममें हैं तो
सम्मान-मान मुझमे भी !
रत अखिल - विश्व - सौन्दर्य
तुम्हारे पद-पूजन में, अनुपम !
रज चुन रच सकता हूं मैं भी
कञ्चन की मूर्ति मनोरम !
सम्राज्ञि ! तुम्हीं आराध्य,
किन्तु है स्वप्न-राज्य मेरा भी,

प्रभातफेरी

अभिमान-मान तुममें हैं तो
सम्मान-मान मुझमें भी !
प्रेमी के जग-जीवन में, प्रिय,
प्रियतम जितना उपयोगी,
है उतना ही आवश्यक इस
जीवन में दीन वियोगी !
यदि शाश्वत यौवन शशि में है
तो जीवन सागर में भी,
है बुझती आँखों में रस
मधुमय हैं तृषित अधर भी !
है शक्ति तुम्हारी सम्मोहन,
तो मेरी शक्ति साधना,
वैभव अपार श्रीचरणों में,
तो यहा अपार कल्पना !
इस दीन कल्पना के बल पर
है स्वप्न-राज्य मेरा भी,
अभिमान मान तुममे हैं तो
सम्मान-मान मुझमें भी !
मधु-रूप सुरभि चाकर हैं,
परिचारक इस यौवन के,
शाश्वत अगणित हँसते वसन्त
सेवक पर स्नेह-सुमन के !

है गर्व तुम्हें यदि अपने आकर्षण पर,
तो गर्व मुझे भी अपने पागलपन पर !

[दिसम्बर, १९३४

स्वप्न

शीतल सित आतपहारी प्यारी,
उज्वल चारु चन्द्रिका थी,
अति विमल धवल ऊर्मिल बयार
बहती थी, शरद्-पूर्णिमा थी !
फूलों के तनवाली आली,
सित सुमन सेज पर सोई थी,
वह सजल कान्तिवाली बाला,
अपलक थी, सुधि-बुधि खोई थी !
ढीले थे शिथिल गात कोमल,
परिधान रेशमी स्निग्ध तरल,
उमडे पड़ते थे अङ्ग अङ्ग,
ज्यों विरल जलद से चन्द्र विमल !
पावस - सरिता - सी जघाए,
यौवन की धाराए अमन्द !
थीं पुलकित उमड़ीं वेगवती,
मद-भरी लबालब नव-उमङ्ग !
विधु-वदन, भरी गोरी ग्रीवा,
उन्नत पुलकित उमड़े उरोज—
यौवन उमङ्ग-उद्गम अधीर,
छबि सर पर ज्यों फूले सरोज !
अभिलाषा की पहली उमङ्ग,
अङ्कूरी सजल कपोलों में,
थी नई लालसा की लाली,
नव-पल्लव-से मृदु अधरों में !
श्वासों में था सौरभ-विहार,
अङ्गों में नव-यौवन-उभार,

प्रभातफेरी

उर्मिल अलकों में मधु-बयार,
जीवन में वासन्ती बहार!
नयनोत्पल के मृदु कोषों में,
यौवन-विलास के नवल भृङ्ग!
प्यारी के प्रिय उर में प्रकाम
बसते थे जग-मोहन अनङ्ग!
था नई उमङ्गों का जीवन,
थी नई तरङ्गों की धारा,
फल-फूल रहा था यौवन-बन,
ज्योतित थी जग में छबि-तारा!
सित सुमन-सेज पर सोई थी,
वह विश्व-विमोहनि कोमलतन!
निष्प्रभ उत्सुक सुम लखते थे,
उसको प्रतिक्षण अनिमेष-नयन,
थे चन्द्र मुग्ध मोहित अनिमिष,
थे अस्थिर चञ्चल तारे स्थिर,
निशि भी प्रशान्त निस्तब्ध मौन,
रुक जाती थी समीर फिर फिर!
थी मेरी प्रतिकम्पन अनुरत,
था रोम रोग वेसुध विमुग्ध,
चञ्चल उर प्रश्नाकुल व्याकुल,
पर था उत्कंठित कंठ रुग्ध!
निश्चल थे मोहित नयन-बाल,
पर निश्चल क्या जीवन-धारा?
पल पल, लो, बहते जाते हैं,
मानव का इसमें क्या चारा!
मधु-क्षण बीते, रजनी बीती,
बीतीं छबि-दर्शन की घड़ियां,
सब बीत गईं सत्वर सत्वर,
मणि-मुक्ता-माला की लड़ियां!

वसन्ती बाला

वह प्रिय राजकुमारी थी,
सुन्दर थी, सुकुमारी थी,
उर पर विकसित होतीं कलिया
(था उनमें यौवन का भार)
लता-गात मे शोभित थीं,
यौवन-सौरभ से सुरभित था उपवन-सा ससार !

रसीले नयनों में मधुमास,
हास चन्दा का था,
सुमन-से थे विकसित-से अङ्ग
तरुण सोने की थी आभा;
कमल-दल-से अति सुन्दर ओठ,
कान्तिमय कोमल कलित कपोल,
किन्नरी का-सा कठ अमोल
दसन हँसते हीरक से थे।

वसन्ती सरसों का हिय-हार,
वसन्ती कुसुम मेखलाकार
क्षीण कटि में पहिने सुकुमार
अप्सरी-सी—अति सुन्दर थी !
वसन भी सभी वसन्ती थे,
सभी से सुन्दर चोली थी।

विकल हो उठता जैसे नीर,
उसे छूता जब सुखद समीर,
वसन्ती लहराता था चीर—
व्योम में ध्वजा वसन्ती थी।

वसन्ती बाला

वसन्ती बाला सुन्दरी थी,
कलिका-सी पर भोली थी!
विचरती थी निर्जन वन बीच
प्रकृति की सुन्दर नन्दिनी थी,

सपने में

सखि, मैने सपने में देखी
जीवन की काँटों की झाड़ी
बन गई तुम्हारे छूने से
मृदु कलियों की मञ्जुल डाली।

थीं सुन्दर सरल सत्य कलिया,
सखि, सप्त-रङ्ग-रञ्जित अमद
वे मानस की दीपावलिया।

तुमने आँसू से सींची हैं,
मृदु मुसकानों से विकसाई,
जाने कितने सुख-दुख सह कर
प्रिय, तुमने ये निधिया पाई –

ये सुन्दर सरल सत्य कलिया।
अब होंगी मेरे मानस की—
उज्वल अक्षय दीपावलिया॥

[सितम्बर, १९३२

चमेली

कहीं खिली है विजन विपिन में, चञ्चल चारु चमेली!

चन्द्र-कला से है उज्वलतर
विश्व-सत्य से शुचितर, सुन्दर,

सरल-स्नेह-साकार मोहिनी मेरी मधुर पहेली!

स्नेह सुरभि से सुरभित है जग,
रूप-किरन से है मुखरित मग,

पग पग ज्योतित करती तारा वैभव-भरी अकेली!

गन्ध-अन्ध हो आया मधुकर,
'क्या लोगे, अलि ?' बोली सुन्दर,

स्नेह-हास-सी हँसी रसीली यौवन-भरी नवेली!
कहीं खिली है विजन विपिन में, चञ्चल चारु चमेली!!

[सितम्बर, १९३३

कर्णफूल

गुन-गुन प्रिय के गुन-गन गाने
बन गया मधुप-मन कर्णफूल !

मोती-से मन वाली बाला,
उसके सीपी-से कानों में
कुछ कहने गया समीप मधुप,
मधु भरने अपने प्राणों में,

उस कुसुम-कुमारी को छूकर
बन गया मधुप-मन कर्णफूल !

[मार्च, १६३५

कोयल

मुहुः मुहुः कोयल कुहुकी कुहु कुहु
मुहु' मुहु' कुहु कुहु कुहुकी कोयल !

बन की डाली डाली डोली,
मधुऋतु की मधुप्यारी बोली,

तरु तरु में जागी नव कोंपल !
मुहु' मुहु' कुहु कुहु कुहुकी कोयल !

मधुमय स्वर से सिञ्चित मधुबन,
सुरभित नीम, नवल-दल पीपल,
मधु में बौरे आम मञ्जरित,
फैले द्रुम द्रुम विद्रुम-से दल,

पिक-श्यामल मँडराते अलिदल !
मुहु' मुहु' कुहु कुहु कुहुकी कोयल !

बोल रसाल रसाल सजाते,
मधु बरसा मधुमास जगाते,
कलि-कलि कुसुम-कुसुम के उर में
मधुमय स्वर मधुरस बरसाते,

ढुलकाते रस, स्वर के बादल !
मुहु' मुहु' कुहु कुहु कुहुकी कोयल !

किसलय-दल कोमल मधुराधर
खोल आज मधुबन के तरुवर,
पीते पिक-मधु रिक्त हृदय भर
खिल खिल उठते पुलकित तन पर

प्रभातफेरी

नए फूल-फल, नए मुकुल-दल !
मुहु' मुहु' कुहु कुहु कुहुकी कोयल !

पीले लाल हरे पत्रों के
पल्लव-नीड़ बने मधुबन में,
वहीं विजन के सूनेपन में
कहीं छिपी प्राणों-सी तन में

बोली पिक मधुबानी कोमल !
मुहु' मुहु' कुहु कुहु कुहुकी कोयल !

प्रणय-हीन प्यासे अधरों को
भर लाई पिक मधु की प्याली,
लाई फिर यौवन की लाली
वाले सुन, आए बनमाली !

मधु में डूबी अब विरहानल !
मुहु' मुहु' कुहु कुहु कुहुकी कोयल !

आज भर दिए पिक-श्यामा ने
उर-अभाव में हँसते सपने,
भूल भविष्यत् की भय-बाधा
बीते के सब सुख-दुख अपने,

विहँसे विरह-विधुर जीवन-पल !
मुहु' मुहु' कुहु कुहु कुहुकी कोयल !!

[एप्रिल, १९३४

किन्नरी के प्रति

एक बार फिर गादो, गूँजे
नव-वसन्त-मधु-श्री का गायन !

जिन अधरों पर चल कलियों-सी
खिल उठतीं मधुमय मुसकानें,
उन अधरों के ही पराग से
झरें सुमन-माला-सी तानें,

मधुराधर से कुसुम-राशि-सम
बहे प्राण-पिक का कल-कूजन !

गाओ अपने मधुमय स्वर में
भरजाए मधुहीन विधुर मन,
भर भर आए सूनी आँखें
आँसू से सरसाए जीवन,

कूज उठे जर जग बन मधुवन
भूले जरा-मरण-चिन्तन मन !

क्षणभर ठहरे जीवन-सरिता
पलभर रुके चपल-गति यौवन,
सुनें शान्त हो चञ्चल लहरें
भूल एक पल कल कल क्रन्दन,

वेसुध हो तन, वेसुध हो मन,
वेसुध हो गतिमय जग-जीवन !

क्षणिक विश्व उस क्षण को भूले
जिससे क्षणिक बना यह जीवन,

डूब जाय मधु-निर्झरिणी में
अक्षय नित्य अनन्त बने क्षण,

बीत जाय अवसान निशा-सम
तरुण प्रात-सा हँसले यौवन !

एक बार फिर गादो, गूँजे
नव-वसन्त-मधु-श्री का गायन !!

(२)

तुम गा देती हो कौन गान ?

जगते पीड़ा के स्वप्नों से
मेरे अन्तर के सजल गान,
शत् शत् पर्वत-निर्झर उठते
गिरते हैं नस नस में अजान !

तुम गा देती हो कौन गान ?

माधव की कञ्चन-वंशी-सी
तुम मधु-पिक-बयनी सुवरन-तन,
भर देती हो स्वर-लहरी से
प्यासे यौवन में नव-जीवन !

जर-जीवन में उपवन खिलते,
गुञ्जार नई करते अलिदल,
डाली डाली पर कलिकाए
बरसा देते रस के बादल !

पल्लवित डाल गाती मर्मर
कर ध्वनित तुम्हारा ही प्रिय स्वर,
'यदि आए यों हँसता वसन्त
हो जग में नित जर्जर पतभर,

फिर खिले विश्व मधुबन समान !'

मन-मधुबन की प्यारी कोकिल !
भरतीं तुम सुख मधु यौवन में,
नित नए गीत सिखला जातीं
अपने मधु के पागलपन में !

ये श्रवन-नयन स्वर-दर्शन से
जब करते क्षणभर सुधा-पान,
सुख-विह्वल होती साँस साँस,
खिंच जाते शत् शत् स्वर-वितान !

उन अधरों में अक्षय-मधु है,
नव यौवन है, सजीवन है,
नन्हे उर में नन्दनबन है,
रोओं में, तन में मधुबन है,

वे इसीलिए मधुभरे गान !

गाओ, अभाव की व्यथा भूल
मैं बेसुध हो जाऊ क्षण में,
तुम मूर्छित मस्तक चूम, प्राण !
भर दो चिर-निद्रा जीवन मे,

गाओ प्रिय अपना नेह-गान !

आओ दोनों लय हो जाए
लहरों में लहरों के समान !

[दिसम्बर, १९३३

नयन-भिखारी

बड़े हठीले नयन-भिखारी !
दर्शन दो भिक्षा के नाते,
दर्शन को आए, सुकुमारी !

एक बार कह दो, लो, भिक्षुक !'
द्वार तुम्हारे आए, मोहिनि !
चटुल मीन-नयनों मे मुसका
दया-दान दो, सुखमा-हासिनि !

हँस कर ही बहला दो इनको,
बड़े ढीठ ये नयन-भिखारी !

जीवन के सूने घन-पट पर
खिच जाओ बिजली-सी हँस कर,
भर दो अपने प्रियतर स्वर से
सब दिन को यह निर्धन अन्तर,

जीवन भर को भर लेंगे मन,
एक निमिष में नयन-भिखारी !

एक बार दर्शन दो, मानिनि !
फिर तो आओगी पल पल पर,
क्षण क्षण में तुमको देखेंगे
जग के कन कन मे अंकित कर,

पलकों मे भर लेंगे, मधुमयि,
युग युग को ये नयन-भिखारी !
दर्शन दो भिक्षा के नाते,
दर्शन को आए, सुकुमारी !!

[मार्च, १९३४

पत्र

पीपल के पीले पत्रों पर
लिख भेजू यदि ये करुण गान,
उन उड़ते पागल पत्रों को
आँचल फैला दोगी न, प्राण ?

पर तुम्हीं कहो, क्या लिखू आज
बेसुध मानस है, विकल प्राण,
गूँजा करती है अन्तर मे
प्रतिक्षण प्रतिपल बस एक तान,

जाने कैसे पागलपन मे
तुम गा देती हो प्रेम-गान !

लो, तुम्हीं आज दुष्यन्त बनो
मैं पत्र-दूत भेजू, सुन्दर !
है कहा आज पर कमल-पत्र
जो भेजू नख से अंकित कर ?

क्या चपल बात पर ही लिख दू
आँसू से अपने सजल गान ?

तुम ही बन जाओ प्रियम्बदा
सिखला दो मुझको प्रीति-रीति,
चाहे सपनो में ही आओ
लिखवादो बस दो मधुर गीत,

तुम बिन कैसे लिख पाएँगे
ये चपल प्राण अब नेह-गान ?

[मार्च, १६३२

मिलन

बहुत दिनों तक दूर रह लिए आओ अङ्कमिलन करले!
विरह-व्यथा के दिन सुमिरन कर दृढतर आलिङ्गन भरले!!

अभी अश्रु हैं विकल दृगों मे
उस बीते वियोग के सहचर,
नई अधखिली मुसकानें हैं
सुख के अभिलाषी अधरों पर,

गले मिलें, हँसले रोले, प्रिय, प्रेम-मिलन से भुज भरलें!

अरुण प्रात से तरुण अरुणतर
मधुराधर वे वारें चुम्बन,
फिर फिर मधु-मद पियें-पिलावे
श्याम रैन से श्यामल लोचन,

यों अपने दिन-रात बनाले, सुखमय जीवन-क्षण करले!

काल-कर्म के अगणित बन्धन
आज बाँधलें भुज-बन्धन में,
ज्ञान-ध्यान के सकल मनोरथ
भरदे एक मधुर चुम्बन मे,

एक अमर क्षण के अन्तर में अगणित कल्पान्तर भरलें!
बहुत दिनों तक दूर रह लिए, आओ अङ्कमिलन करलें!!

[सितम्बर, १९३४

प्रेम-नदी

बन्धन कोई बाँधे हज़ार, पर रुक न सकी यह हृदय-धार !

उद्गम है छोटा-सा ही मन,
पथ आँखों में, बूँदों में गति,
पर बूँदों से बन महासिन्धु
यह ग्रस लेती सारी संसृति,
सागर में जग दृग-द्वीप बना, देखा करता उसका प्रसार !

मृदु पलकों के दो पुलिन बने
लघु लहरें स्मिति की चटुल क्षीण,
पर क्षण में ही बन जाती है
फिर यह प्रवाहिनी कूल-हीन,
सबको तराशती चलती है, यदि रोकें गति इसकी कगार !

जो हेय समझ उर-सरिता को
ले ध्येय-ध्यान बाहर आते,
वे योग समझ, सहते वियोग,
जल-बिन मीनों-से अकुलाते,
तट के तरु-से गिर जाते वे ऋषि-मुनि धारा में निराधार !

क्षणभंगुर बुद्बुद्-सा खिल कर
खोजाता इसमें अहंज्ञान,
कैसा अद्भुत इसका प्रवाह,
हो जाते अचल चलायमान !
गंगाधर भी तो सह न सके थे इस प्रवाहिनी का प्रहार !

तट पर मृग-सिंह साथ आते
भय का, हिंसा का नाम नहीं,
इसके अधिवासी मीनों को
भी मत्स्य-न्याय का ज्ञान नहीं,
नन्दनवन बन कर मुसकाते मरु पीकर इसका प्रेम-वार !

है नियम यहा इस जगती पर
नीचे तल पर गिरती सरिता,
पर निशि-दिन ऊँची ही चढ़ती
बढती रहती कवि की कविता,
कारण यह है, कवि के उर मे लहराता रहता सदा प्यार !

इस प्रेम-नदी में ही बह कर
थे दो अणु मिल कर एक हुए,
सौ विश्व यहा ग़ोते खाते,
सौ विश्व निकलते नित्य नए,
कण-कण के उर में छिपे हुए हैं इस सरिता के सिंहद्वार !
बन्धन कोई बाँधे हज़ार, पर रुक न सकी यह हृदय-धार !

बिजलीरानी

क्षणभर ठहरो, बिजलीरानी!
इतनी जल्दी छिपो न, चपले! क्षणभर ठहरो, नभ की रानी!

अपने आभा के पलकों में
छिपा न लो जादू के लोचन,
देखो फैला है अम्बर बन
भिक्षुक का उत्कंठित जीवन,
जीवन-नभ में पलभर खिल कर, छिपो न पल में, चञ्चल रानी!

यों तो यह असार माया है
अङ्कित हो मिटती रहती है,
कन कन मे हँस हँस फिर छिप छिप
पल पल पर आशा छलती है,
पर तुम तो रह जाओ, देखो, वर्षा भली हो, बिजलीरानी!

क्या बादल के भरे हृदय मे
आई झलक-स्वरूप झाँकने?
आई थीं क्या नभ के उर में
लहराती जल-राशि नापने?
हँस हँस कर छिप जाने को ही आई थीं क्या, बिजलीरानी?

रुको, प्राण, सूने अन्तर में
रजत-रेख हो तुम प्रकाश की,
इन्दु-विहीन निधन मन-घन में
तुम्हीं विमल छवि चन्द्र-हास की,
तुम कञ्चन, तुम रजत-हास, तुम रत्न-राशि हो, बिजलीरानी!

[मार्च, १९३४

बिदा

आओ, रानी, बिदा माँग लूँ
चूम तरुण कलियों-से लोचन,
आओ सजनि, इन्हें समझा दूँ
व्यर्थ न खोए नेह-नीर-कन।

प्रिय, असह्य होंगे वे आँसू
देखो छोड़ न देना धीरज,
बिदा समय है, क्षणभर को भी
म्लान न हों नयनों के नीरज।

प्राण, मिलन दिन के शुभ-अवसर
के हित आँसू रखना सञ्चित,
उस दिन दृग मुसकान अश्रु के
हर्ष-इन्द्रधनु से हों शोभित।

दिन गिनते दिन बीत जायँगे
प्रिय, गृह में रह या प्रवास में,
हलकी होगी विरह-व्यथा नित
प्रीति-प्यास, विश्वास, आस में।

दूर रहूँ या पास, तुम्हारे
श्रीचरणों का दास रहूँगा,
नित अमूर्त को मूर्त बनाने
का दुर्लभ अभ्यास करूँगा।

तम के अगम मर्म लिखते जो
रजनी के बालक नभ-तारक,
स्वप्न-घनों की सघन छाँह में
मुझे दिखाएँगे तुम तक पथ।

विदा

प्रेमयोग-बल से चित्रित कर
वे प्रफुल्ल पद्मों-से लोचन,
श्याम पुतलियों की सुख-निशि में
ले विश्राम हरूँगा भव-श्रम!

अभिलाषा आह्वान करेगी,
स्वप्न-यान से तुम उतरोगी,
सोने के घन में ऊषा-सी
आ, नयनों मे वास करोगी!

लाज नहीं, अब प्रेम बनो तुम,
भक्ति बनूं, करलूं पद-पूजन,
उर की प्रतिमा का अर्चन कर
सफल करू शत जन्म-मरण-श्रम!

पूर्ण प्रेम की थाली में भर
अक्षत पद-रज, रोली जावक,
नक्षत्रों से आज सजा दो
अस्त सूर्य-सा आनत मस्तक!

आओ, करुणाकर, पद-रज दो
जीवन करदो शिवमय सुन्दर,
सुर-सरिता सम शोभित होगा
पद-रज का अभिषेक शीश पर!

पतिव्रता या प्रेमव्रता के
चरणों की अनमोल धूलि-से
निकले होंगे रवि शशि तारक,
जो प्रदीप इस पथिक विश्व के!

तुम आराधन, तुम आलिङ्गन,
तुम ही सतत साधना, रानी!
वेद तुम्हारी वाणी होगी
औ' पुराण, यह प्रेम-कहानी!

सखे! अपनी गरिमा-महिमा
सोचो स्वयम् भला क्या जानो?
मेरे मन-मन्दिर के दीपक!
निज प्रकाश तुम क्या पहचानो?

तुम कह दोगी तो सहर्ष मैं
बन बन विचरूँगा बनचारी,
प्राण, तुम्हारे आलिङ्गन-सी
बन जाएगी संसृति सारी!

स्नेह-सुरभियुत तुम पद्माकर
मैं मधु-अभिलाषी कवि-मधुकर,
चरणाम्बुज छू चलूँ, बिदा दो,
मैं समीर-सम सौरभ भर भर!

सुमुखि, बिदा दो, आज विश्व में
प्रेम-नाम की सुरभि बसेगी,
आज पास तक, कल प्रवास तक
प्रेम-डोर कुछ और बढेगी!

[मई, १९३५

सपना

मुझे समझना केवल सपना !
सुमुखि ! चाहता था जो पलभर
मनमोहन नयनों में बसना !

कभी भूल से भी खुल जाते
हृदय-द्वार यदि, अहे कमलिके !
एक बार में मिट जाते बस
सकल शोक-श्रम आकुल अलि के !

भूल शूल की कसक, सीखता
सुरभि-कोष में बन्दी बनना !

प्राण, तुम्हारे प्रिय अधरों से
जो ये तृषित अधर मिल जाते,
अपनी प्यास प्यार से पल मे
मौनालापों में कह पाते

इनमें भी मुसकान निखरती
अधर भूलते आहें भरना !

धीरे से कह देते तुमसे
प्रथम और अन्तिम चुम्बन में
महासिन्धु-सी अभिलाषाए
छिपी रहीं क्यों अब तक मन में !

कहना-सुनना और उलहना
सभी भूलती रस पा रसना !

किन्तु कहा की बात छेड़दी,
हृदय-द्वार कैसे खुल जाते !

सपना

कैसे मिल जाते अधरों से
अधर ? और कैसे कह पाते ?

सपना कैसे सच हो जाता ?
सब असार निस्सार कल्पना !

मैं वह सपना हू जो आया
सपना लेकर, बनकर सपना,
लाया था अपना सुख-सपना,
सीखा मैंने सुख है सपना;

एक सत्य सीखा सपने में
सच है सपना अपना अपना !
मुझे समझना केवल सपना !

[सितम्बर, १९३४

आलिङ्गन

अधर दबा, मुसकादी सुन्दर
व्याकुल कर चिर-चञ्चल मन,
सहसा क्षण में भावाकुल हो
जाग उठे प्यासे लोचन।

स्नेह-परस-मिस सिखा पुलक-दल
बन्दी बना लिया मृदु तन,
पुलकावलि की मृदुल डोर में
कस-कस जकड़ दिया यौवन!

चूम चूम मादक अधरों से
मूँद दिए फिर चल लोचन,
फिर खिलखिला उठी कलिका-सी
सहसा भर प्रेमालिङ्गन।

[अक्तूबर, १९३२

पूनों की रात

सरिततट है, पूनों की रात
प्रिये, मायाविन आधी रात !

क्षितिज तक सिकता का संसार
उसी पर गंगा बन, सुकुमार
धवल निर्मल निज अङ्ग पसार,
सो रही है पूनों की रात !

अधर का मर्मर स्वर अति क्षीण
हुआ अब अन्तरिक्ष में लीन,
सुप्त तारक, तृण, तरु, जल, मीन,
व्याप्त है अणु-अणु में यह रात !

शिथिल तन में रोओं का भार,
और रोओं में प्रेम अपार,
निशा की पलकों में, सुकुमार
मुँदा है तरुण गुलाबी प्रात !

शाम के नारंगी रँग, प्राण !
दृगों में बन्द प्रभात समान,
रुका है पलक-निपात अजान,
कहीं सोई है चञ्चल वात !

दूर हो तुम मुझसे, छबिमान !
सजग पर क्या तुम भी, अम्लान ?
कहो, क्या तुम भी चञ्चल, प्राण ?
विकल क्या विह्वल-विह्वल गात ?

सरित-तट था, पूनों की रात,
प्रकट करने तुमने अनुराग
दिया था पान, बढ़ा कर हाथ
याद है क्या उस दिन की बात ?

[

जीवन के पल

बीत रहे पल पल जीवन के!

कभी अँधेरी, कभी उजाली,
प्रात और सन्ध्या की लाली
रँगती सूने पल जीवन के।

क्षणिक कल्पना, नश्वर आशा,
फूलों की मुसकाती भाषा,
बहलातीं कुछ पल जीवन के।

वात जगाती सोई सदिया,
निद्रा दुलराती मधु-स्मृतिया,
चलते यों ही पल जीवन के।

कल थी कल, है आज आज, फिर
कल होगी कल, कहा आज फिर।
कल कल बहते पल जीवन के।

बीत रहे पल पल जीवन के।

[सितम्बर, १९३२

आकुल प्राण

आज क्यों मेरे आकुल प्राण ?

नयन-झरोखों से पल पल पर
झाँक रहे किसके दर्शन को ?
देख रहे किस निर्मम का पथ ?
किसे खोजते प्राण ?

कैसी उत्सुकता, उत्कण्ठा ?
क्या इनकी पागल अभिलाषा ?
किसे खोजते अन्तरिक्ष मे
उड़ उड़ मेरे प्राण ?

विकल ताप बन कभी गात मे,
रग रग में रम जाते पागल,
कभी घुमड़ते दीर्घ श्वाँस में
मेरे व्याकुल प्राण !

आज क्यों मेरे आकुल प्राण ?

[सितम्बर, १६३२

काला अतीत

काला अतीत, धुँधला भविष्य
आँसू का वर्तमान मेरा,
सूने अभावमय जीवन का
प्रिय धन है विरह-गान मेरा !

मै हँसता हू, रो लेता हूं,
फिर क्षणभर मन बहलाने को
सुख-दुख के पद गा लेता हूं।

किस सुख को रे मैं जीवित हू ?
किस आशा से दिन गिनता हूं ?
मैं हँसता रोता गाता हू ?

[नवम्बर, १६३२

मधुकर

कहा मिलेगा स्नेह, अरे मन-मधुकर मधुरस के प्यासे ?

साँझ हुई मुँद गए कमल-दल
आश्रय कहा मिलेगा, पागल ?
किसके उर में पलभर को विश्राम मिलेगा तृष्णा से ?

शोणित-रञ्जित छिन्न गात ले
दिन भर शूलों से पथ पूछा,
गन्ध-अन्ध हो, शून्य गगन में
अलि, तुमने फूलों को खोजा,
किसे पूछते हो रजनी में, अब बन की सोती कलिका से ?

निद्रालस मद-भार शिथिल जग
मुँदे प्यार के दृग-रक्तोत्पल
अब बोलो, अलि, कहा बसोगे
किन पलकों में होगे ओझल ?
कैसे देखोगे अपना पथ अब नभ की धुँधली आभा से ?

दीवारों से टकराओगे
भवनों में मत जाओ, मधुकर !
उनसे पूछो प्रियतम का पथ
तुमसे ही हैं नभ के तारक,
चीर चीर जल पूछ रहे हैं प्रियतम पथ जल धारा से !

कौन सुनेगा, क्यों गाते हो ?
आहों में उर-भार बहादो
जीना है इस जीवन में भी
साँसों से जीवन बहलालो,
रस के प्यासे ! प्यास बुझेगी जलने में इस ज्वाला से !

[मार्च, १६१७

मुसकान

गए होंगे, सखि, वे पहिचान
लजीले चञ्चल-चञ्चल प्राण!

प्रेम-विह्वल हो उठते नयन,
भूल जाती मैं तन-मन-प्राण,
सखी! क्यों देख उन्हें, नादान
नाच उठती सहसा मुसकान?

बरजने पर दूनी, सखि, देख
चुलबुली चञ्चल चल मुसकान!

सखी! जब आजाते हैं पास,
अरी, जब आता उनका ध्यान,
चबा चल अधर मरोर कमान
रोकती हूं चञ्चल मुसकान,

मना कर जाती हू पर हार
नहीं रुकती मेरी मुसकान!

दुपहरी मे जब तज गृह-काज
सखी! सुनती उनकी पद-चाप
चञ्चला-सी आतुर मुसकान
छेड़ती रह रह कर नादान,

'आ रहे हैं तेरे चितचोर!'
हठीली री, आली मुसकान!

[अगस्त, १६३२

सुधि

हँसती आती हौले हौले !

पोंछ पोंछ आँसू समझाती,
दुःख भुलाती, उर दुलराती,
हँसती रोती, गीत सिखाती,
प्रियतम को लिखवाती पाती

आती री, जब हौले हौले !

सोते-जगते साँझ-सवेरे,
करती सुधि मानस के फेरे,
छाया-जग में नित्य घुमाती
बहिन सहोदरि-सी दुलराती

आती री, जब हौले हौले !
हँसती आती हौले हौले !

[सितम्बर, १९३३

सतत प्रतीक्षा

सतत प्रतीक्षा, अपलक लोचन,
एक बार आओ, जीवनधन !

छाया भी न छुऊँगी, निर्मम !
छाया बन कर ही आजाओ,
मूँद न लूँगी पलकों में, प्रिय,
विद्युत-से हँस कर छिप जाओ !

बरबस खींच न लूँगी, पलभर
एक झलक बन जाओ, मोहन !

हँसो सुमन में, छीन न लूँगी,
तुमको बस हँसते देखूँगी,
देख देख ही हिय भर लूँगी,
प्यार न लूँगी, प्यार करूँगी,

और कहो तो आँख मूँदलूं,
हँसलो तुम, मेरे आकर्षण !

मेरे लिए सत्य छाया है,
तुम मत आओ, सुधि बन जाओ,
छायामय तम है मायामय
पलभर को सपना बन आओ,

नेह नहीं, हा, सपनों से ही
भर दो आज उनींदे लोचन !

सतत प्रतीक्षा, अपलक लोचन,
एक बार आओ जीवनधन !!

[मार्च, १९३४

अनन्त प्रतीक्षा

बस एक बार साकार बनो,
मेरे युग युग के आकर्षण !
अब मूर्तिमान बन जाओ, प्रिय,
कब से उत्सुक प्यासे लोचन ?

सोओगे अन्तर में कब तक,
मेरे अन्तर्यामी प्रियतम ?
जागो उत्कंठित जीवन के
स्नेहाकुल क्षण-क्षण में, निर्मम !

सोओगे कब तक, प्राणाधिक !
आकुल प्राणों मे पीडा बन ?

प्रिय, पुलकित कम्पित बाँह लिए
मै नयन मूँद, बन लोल लहर,
विह्वल तन, पागल मन लेकर,
सरिता में या सरितातट पर

तुम को ही खोजा करती हू
फैलाए सूने आलिङ्गन !

मैं चपल वात-सी, वासर भर
फिरती हू प्रिय की आशा से,
फिर म्लानमना गोधूली बन
आजाती हू अभिलाषा से,

फिर बाट जोहती हूँ निशि में
मैं दीन वियोगिन तारा बन !

निशिभर नभ में शशि-दीप वार
पथ जोह जोह थक जाती हूं,
प्रातः ही निष्प्रभ-दीप लिए
फिर भी स्वागत को आती हू,

ऊषा से पहले धुँधले में,
मैं आजाती हू आभा बन !

निर्मम ! मैं तुम्हें कहा पाऊ ?
तुम ही साकार बनो, मोहन !
इस अपलक सतत प्रतीक्षा मे
आजाओ बन कर एक किरन !

प्रियतम ! मै पथ में सोजाऊ
बन नन्हीं तुहिन-बिन्दु मृदु-तन !

जागो, प्रभातप्रिय, कन कन से,
उतरो सुवर्ण बन कन कन में,
जागो, सगीत अमर बन कर
प्राणो के तारों मे, मन में,

विश्वास स्नेह से गूँज उठे
यह सुख का अभिलाषी जीवन !
रम जाए रोओं में, उर में
सगीत तुम्हारा, जीवनधन !

बस एक बार साकार बनो,
मेरे युग युग के आकर्षण !

[मार्च, १६३४

अलिदल

नए नेह के गान सिखाने आए, अलि, वसन्त के अलिदल !

नभ में ये झुकते बलखाते,
पावस-घन-से ही मँडराते,
वैसे ही मद-भरे झूमते इठलाते आते अलि श्यामल !

गर्जन ना, सखि, गुञ्जन लाए,
पावस ना, वसन्त भर लाए,
चल चम्पक-कञ्चन बिजली ना,
केसर-रेखा अङ्ग लगाए,
प्यास बुझाने नहीं, आज तो प्यास जगाने आए बादल !

चाह-भरे अलि, आह जगाते
पल में नव अलिदल घिर आते,
कभी लाज की, कभी प्यार की,
कभी राग की आग लगाते,
किंशुक और पलाश जगाते आते, अलि, अलि के दल पागल !

खिली कान्ति कचनार-कुसुम में,
हुई मञ्जरित सुधि रसाल में,
फूट पड़ी अब तरुण अरुण वय
खिल-खिल-खुलती कुसुम-माल मे,
यौवन-हाला, जीवन ज्वाला, उमड़ा लाए उपवन-पाटल !

दाड़िम फूट पड़े यौवन मे—
नेह-गान गाए अलियों ने,
घूँघट-पट की सलज ओट से
अचक आँख खोलीं कलियों ने,
नयनो मे बोलीं मुसकाई, रोली-रँगे कपोल खोल चल !

[मार्च, १९३४

वसन्त की चातकी

मैं चिर-प्यासी विकल चातकी,
तुम बन आओ रस के बादल !

यौवन मे मधुऋतु घिर आई,
मेरे परदेसी बनमाली !
कब की प्यासी आस लगाए
मन की, मधु की ख़ाली प्याली !

रस की प्यासी कलियो के तो
अधर चूमते आए अलिदल !

उमड़ पड़ी कलियों के उर में
यौवन की मतवाली लाली,
अलियो ने ढुलकादी उर मे
मधु-रस की प्याली पर प्याली,

डाली डाली झूम उठी
मधुपों से मधु पीकर मद-पागल !

कोकिल ने मधुधार बहा दी
रह रह बहा हृदय से कल रव,
एक वर्ष मे एक बार फिर
जागे जगतीपति वसन्त नव,

धरा-रमण विहँसे, मुसकाई
धरा, भरे अधरों से पाटल !

प्रभातफेरी

चुन चुन कुसुम वसन्तसखा ने
कुटिल धनुष से चल अलियों के
पीर-भरे, प्रिय, तीर बहाए
वेध दिए उर कच्च कलियों के,

रग-रग, रोम-रोम, नस नस में
वेध दिए ज्वालाशर अविरल।

चीर समीर धीरहर शर ये
आए और जलाने जीवन,
रमे रागप्रिय नवयौवन में
गात गात में विकल ताप बन,

रस ले, रस-बादल बन आओ,
तड़प रही हूं ज्वाला में जल।

बरसो, जीभर कर रस पीलू
रोम रोम रसलें, उर भरलू
रस ना, रसना रस की प्यासी,
आओ यह रस-प्यास बुझालू

कब की प्यास। आस कब तक अब ?
बरसादो रस-बूँदें, शीतल !
मैं चिर-प्यासी विकल चातकी,
तुम बन आओ रस के बादल।

[मार्च, १६३४

सन्ध्या

आई सन्ध्या शशि की प्यारी !

प्यारे प्रियतम के चिन्तन में झुकी लजाती आनत चितवन,
मिलन-निशा की सुख-आशा मे दिशि-दिशि कभी डोलते लोचन !

अपने नीलम के महलों से आई अब पश्चिम-दिशि-पथ पर,
कोमल अरुण चरण-नख छू छू अरुण रेणु रँगती है अम्बर !

कोमल चरणों के दर्शन से कमल लजाए-से कुम्हलाए,
हंसों के विहार-सर ने ज्यों गति लख अपने नयन नवाए !

उत्सुक धरणी पर धीरे से धरती पग सन्ध्या कोमलतन,
दरस परस पा मुसका रजकन खिल उठते ज्यों गेंदा के वन !

चिर-सुहागिनी के पद-नख छू बनती अवनी भी सुहागिनी,
व्योम-माँग मे सेंदुर भरती हँसती सरसों सी सुहासिनी !

नीलम की नभ सरसी में भी जागीं कुमुद कुंद की कलियाँ,
उठीं मिलन की सरस की रास को चाँदी की नन्हीं-सी परियाँ,

पुलकित तन के अङ्गराग को कुसुमों का पराग हर लाई,
मद-मकरन्द मदिर नयनो में अपने मधुकर को भर लाई !

कभी उलझता चञ्चल अञ्चल वह कोमलतन झुक सुलझाती,
फिर वेसुध चञ्चल गति से चल निज सुवरन सारी उलझाती !

सन्ध्या के नत मुख पर लज्जा होली-मिस बरसाती रोली,
केशररंजित चञ्चल अञ्चल, केशाच्छादित सुवरन चोली,

सोने मे मुकुलित उजियारी !

[दिसम्बर, १६३२

अब आते होंगे, जीवनधन !

सखि, आते ही होंगे प्रियतम,
अब आते होंगे जीवनधन।

गोधूली कबकी घर आई
वन के पछी गेह सिधारे,
सुन सखि, पथ के मौन सॅदेशे,
आते होंगे प्राणपियारे
फडके वामअङ्ग, पुलकित तन
आज गूॅथने प्रेमालिङ्गन।

चल अभिसार करू बन बन में
बीती अब बासर की घड़िया,
शशिप्यारे के सरस परस को
उत्सुक कुमुद-हृदय की कलिया,
मिलन-निशा के मौन सॅदेशे
धीरे से कह जाता कम्पन!

चञ्चल अलि-से उनके श्रीपद
उर के शतदल में धारण कर,
रोम रोम में हर्षाऊॅगी
वारेंगे मणिया आँसू झर,
मुॅदे हृदय के अधकार में
आज खिलेंगे कितने मधुवन!

दूर देश से आवेंगे वे
पीत वदन होंगे शशि प्रियतम,
मलिन अधर होंगे पथ-श्रम से
म्लान नयन नत चितवन, कृशतन,
श्रान्त हरूँगी क्षण भर में, सखि,
आज पिया की सुमनसेज बन।

जब वे आवें मैं मावस बन
दिशि दिशि में फैला तिमिराञ्चल,
सकल विश्व से ओट करूँगी
तम में बाधूँगी शशिचञ्चल,
रस भर दूँगी अङ्ग अङ्ग में
वारूँगी अनगिनती चुम्बन !

भरी सेज होगी फूलों की
सजनि, रैन भी अपनी होगी,
आज चरण-रज से सीखेंगे
आत्मज्ञान फिर मेरे योगी,
अविचल सुख दूँगी प्रियतम को
भर भर दृढ पुलकित भुज-बन्धन !

[दिसम्बर १९३३

मावस

मन भटकता है भ्रमर बन, शून्य में शशि-फूल पाने
सृष्टि सोई यामिनी में, आज लघु अरविन्द-सी है!
छोड़ दी हैं नयन-नौकाएं तिमिर के सिन्धु मे, सखि,
आज मावस है विरह की, यामिनी तम-सिन्धु-सी है!

भाग्य हैं मेरे बड़े यदि दीन दृग कुछ खोज पाए,
है गहन गम्भीर सागर, कौन जानें डूब जाए!
हो गए हैं आज आशा के सकल ध्रुव-दीप धुँधले
नयन हैं जर्जर तरी-से आँसुओं का भार भी है!

आज मावस है विरह की यामिनी तम-सिन्धु सी है!

मुँद गए दृग डूब तम में, किन्तु एक रहस्य जाना,
प्रेम-पारावार में सम्भाव्य है, सखि, पार-पाना!
प्रेम में तो डूबना ही पार जाना, सार है यह,
मिट गई भय-भ्रान्ति-चिन्ता, मन्त्र-मणि अद्भुत मिली है!

आज मावस है विरह की यामिनी तम-सिन्धु-सी है!

पुतलिया ही तारिकाएं बन गई हैं ज्योति-सस्मित,
हैं गई अब फैल लहरों पर उन्हीं सी बन अपरिमित,
आज मेरे निठुर प्रियतम मिल गए हैं गहन तम में
श्यामता अब श्याम तम में डूब रत्नों-सी खिली है!

आज मावस है विरह की यामिनी तम सिन्धु-सी है!

[नवम्बर, १९३५

धीरज

अब धीरज धर, रे अधीर मन,
आज मिलेंगे ही जीवन-धन !

यह वेला देखी घड़िया गिन,
क्षण क्षण गिन गिन बिता दीर्घ दिन,
अब तो मिलन-निशा भी आई
आज साध पूरी होगी, मन !

पय्या पड़ प्रियतम प्यारे के
चरण चूमलूँगी आँसू बन !

आज सजीली मिलन-निशा में
मान करेंगे जो मनमोहन,
मैं भी मानिनि बन जाऊँगी
अवगुंठन से ढँक शशि-आनन,

तब वे मना मना हारेंगे
वारेंगे लाखों मधु चुम्बन !

प्रिय रसाल की गोदी में फिर
कोयल-सी कुहकूँगी निशिभर,
कभी चपल पुलकित लतिका बन
भुज में भर लूँगी निज तरुवर,

ढुलक पड़ूँगी फिर बेसुध-सी
वे भर लेंगे प्रेमालिङ्गन !

आज न सोने दूँगी, बालम !

आज न सोने दूँगी, बालम,
मेरे अधिक निदारे, बालम !

अर्ध निशा है, घिरी अँधेरी,
जगर-मगर निश गूँज रही है,
चञ्चल हैं तारे, अञ्चल मन,
अग-जग मदिरा छलक रही है,

यौवन-सरिता उमड़ पड़ी है,
मधु की वेला आई, बालम !

भरी सेज उमड़ी फूलों से,
व्याकुल हैं माला की कलिया,
तुम्हें भेंटने की आशा में
चञ्चल तन की पुलकावलिया,

सूखे अधर मधुर मद प्यासे
रस के प्यासे लोचन, बालम !

आज अभी से सोजाओगे ?
अभी नही सोए हैं तारे,
उत्सुक हैं सब सुमन सेज के
केवल तुम ही अधिक निदारे,

खोलो लोचन, प्राणपियारे,
मानो, बलि बलि जाऊ, बालम !

सुख-समीर के आलिङ्गन मे
बेसुध सघन कुञ्ज के द्रुम-दल,
हलकी ध्वनि कर हिल डुल जाते
प्रतिपल विह्वल उर कर चञ्चल,

प्रभातफेरी

गात गात मे व्याकुलता भर,
आज न सोओ, मानो बालम।

कलि कलि के मुकुलित सपने ले
घिर आए सौरभ के बादल,
लाए कुसुम मधुप के चुम्बन
बल्लरियों की रति-गति चञ्चल,

तरुओं के आलिङ्गन विह्वल,
मानो, आज हठीले, बालम !

देखो सुरभित मौलसिरी भी
फूलों के मिस रस बरसाती,
मेहदी की मद-भरी मजरी
सुरभि-सुरा की धार बहाती,

नस नस में फिर प्यास जगाती
वक्षस्थल उमड़ाती, बालम।

हरसिंगार जो झर झर झरते
कुसुम-राशि से सेज मनोहर,
सौरभ की नन्हीं बूँदो-से
फूल गिराते पुलकित तन पर,

रग रग में कुछ अकुलाहट भर
पुलक पुलक आकुल कर, बालम !

आज विश्व से छीन तुम्हें, प्रिय,
निज वक्षस्थल में भर लूँगी,
मृदुल गोल गोरी बाहों में
कम्पित अङ्गों मे कसलूँगी,

फूलों के तन में भरलूँगी,
अलि-से रैन-निदारे बालम।

यौवन-वेला

अलि, झूम झूम आई वेला यौवन की!
तू देख, अली! कचनार-कली,
यह नई-नई खुल खेल रही,
अलि, खिली आज यौवन-बहार जीवन की!
सखि, मजु मञ्जरित मृदु रसाल,
फैले किसलय के जाल लाल,
द्रुम दल पुलकित, लतिका मुकुलित,
अलि, सिहर उठीं अब डाल डाल मधुवन की!
कल कच कलियां खिल-खिल खुलतीं,
नित नई नई आँखे मिलतीं
रति-सुख-विह्वल, आशा चञ्चल,
आलस सरसाती विश्व, सुरभि उपवन की!
मँडराते मोहित मत्त भृङ्ग,
विकसित कुसुमों के अङ्ग-अङ्ग
उर मे उमङ्ग, नूतन तरङ्ग,
निखरी तरुनाई, अली, आज कन-कन की!
मधुमयी वसन्त-सखी, आली,
सरसों सौरभ में मतवाली,
यौवन-लहरी से वह सिहरी
मधुभार-भरी, मद-मद पवन उपवन की!
यह री वसन्त-वेला आली,
पर सूनी-सी बिन वनमाली
कोकिल कूजित, मधुकर गुञ्जित,
पर हूक उठी री पीर व्यथित जीवन की!
अलि, पुलक-जाल में बन्दी तन,
है आहत हरिणी का यौवन,
मैं मदन-बान सहती अजान,
क्यों सिसक सिसक गाऊ गाथा कसकन की!
अलि. झूम-झूम आई वेला यौवन की!!

वर्षा-श्री

आई है जग के उपवन मे
निखरे यौवन की वर्षा-श्री !

झीनी झीनी बीनी भीगी
बस एक हरी सारी वाली,
उभरे अङ्गो वाली बाला,

आई है जग के उपवन मे
निखरे यौवन की वर्षा-श्री !

हैं श्यामल लोचन, नील अलक
पूरब की सजल समीर लिए,
दृग नेह-भरा नव-नीर लिए,

आई है जग के उपवन मे
निखरे यौवन की वर्षा-श्री !

हैं नील व्योम से लिए नयन,
ले सागर-तट से मधुर श्रवन,
सुनने ज्यों कवियों का गुञ्जन

आई है जग के उपवन में
निखरे यौवन की वर्षा-श्री !

फैला अग-जग में छाया-छवि,
उड़ते बगुलों में रजत-हास,
करती नित रिम-झिम नृत्य-रास,

लो, आई जग के आँगन मे,
निखरे यौवन की वर्षा-श्री !

वर्षा-श्री

रजनी - गन्धा, यौवन - बाला,
मेंहदी की मत्त सुगन्ध लिए,
नन्ही बूँदों के बान लिए,

मायाविन यामिनि बन आई
निखरे यौवन की वर्षा-श्री !

देखो तो शैल-शिखर पर, सखि !
गोरी बिजली बन कोमल-तन
गूँथे निज आलिङ्गन में घन,

नभ के आँगन में खेल रही
निखरे यौवन की वर्षा-श्री !

बह चली मद मादक बयार
सखि, यह सावन की सरस रात,
पल पल प्रस्वेदित अलस गात;

मैं भी मृदु-मंथर-शिथिल-चरण
खेलूँ पिय-सँग ज्यों वर्षा-श्री !

[सितम्बर, १९३९

प्रेम की बात

कैसे कहूँ प्रेम की बात !
प्रेम-स्वप्न मे आए मेरे प्रियतम, सखि, कल रात !

प्रेम-स्वप्न में आए प्रियतम
जैसे अब उनकी सुधि आती,
सुधि आती उनकी प्रति क्षण ज्यों
सग सुरभि मलयानिल लाती,
क्यों न बाँध पाए सब दिन की उनको पुलकित गात !

प्रेम-परस पा, सहज स्वयम् ही
शिथिल वसन थे उर के सरके,
सागर की गिरि-सी लहरों-से
उठे उरोज पुलक पिय-कर से,
रहस-रहस खिलते रहस्य से जल में ज्यों जलजात !

मिले नयन, उलझे आलिङ्गन
हुई एक, दो मादक कम्पन,
बीती रात, गए प्रियतम भी,
कर अंकित अन्तिम दो चुम्बन,
खिले पाटलों-से कपोल ज्यों रंजित अरुण प्रभात !

[फ़रवरी, १९३७

यौवन

यौवन का उद्वेलित सागर,
उच्छृङ्खल आन्दोलित सागर,

जिसमें डाँवाडोल डोलता
डर से डगमग जीवन-यान,
आज उसी से सीख रहे हैं
साहस, मेरे छोटे प्राण!

यौवन की उन्माद-उमङ्गें
दल-बल-युत उत्ताल तरङ्गें,

जिनके सँग गिरि-शृङ्गों पर चढ़
गर्त्तों मे गिरते अरमान,
आज उन्हीं से सीख रहा हू
गिर गिर कर भी पुनरुत्थान!

यौवन की वह जीवन-लिप्सा,
चिर-प्यासी अज्ञान पिपासा,

जिसकी चट्टानों से टकरा
टूक टूक होता अज्ञान,
है सत्याकर्षण का ही वह
शाश्वत-जीवित प्रबल प्रमाण!

यौवन की गर्वित आकाङ्क्षा,
मादक मोह-भरी आकाङ्क्षा,
जिसकी भ्रमित भँवर में बँध कर
भ्रमता भव में जीवन-यान,

भूल-भटक कर खोज रही है
जीवन का शुभ सत्य महान!

[सितम्बर, १९३३

शैलकुमारी

[टॉडा के जल-प्रपात को देख कर]

हुई युवती अब शैलकुमारि !
वे पीन-पीन, पुलकित-पुलकित
नव-नील-नील, कुछ हरित-हरित
बह चलीं लोल यौवन-हिलोर
उमड़ा उर मे यौवन अछोर !

यह नई उमङ्ग-भरी सरिता
क्षण में भूली जीवन अपार,
मद मे भूली यात्रा अनन्त,
नव क्षणिक ऊर्मि में भव-प्रसार !

यौवन की अद्भुत मदिरा है !
है ज्वाला मे भी आकर्षण !
क्षणभर का एक भुलावा है
यह नश्वर क्षण-भगुर यौवन !

जीवन के सरल सरोवर पर
उन्माद-भरी यह चल लहरी,
सुन्दर है, पर उन्मत्त अन्ध,
हर्षित है, किन्तु विमर्श-भरी,

नव-आशाओं का रजत-राज्य
मृग-तृष्णा भूले जीवन की,
चिर-प्यासी है मादक सरिता,
यह मादक सरिता यौवन की !

सावन आया,
यौवन आया,

उर में मृदु भाव उमड़ आए,
नित नए नए सुख-स्वप्नों के
नव नव श्यामल बादल छाए,
अब सजा हरित्द्युत स्वप्न-देश
नव पल नव संदेशे लाए,
सहचरी कल्पनाबाला के
सुख-गीत श्रवन में मँडराए !

बह चलीं लोल यौवन-हिलोर
उमड़ा उर में यौवन-अछोर !
क्या रोक सकेंगे शैल-शृङ्ग
यौवन की उठतीं नव उमङ्ग ?
तज मर्यादा-बन्धन, विवेक
उमड़ीं अकूल नूतन तरङ्ग !

सावन की सुख-हरियाली में
यह नव-यौवन वाली बाला
उत्कंठित उर वहती आतुर
शत्-शत् प्रश्नों की-सी माला !

पर गहन गर्त्त
भीषण प्रपात !
रे चूर होगए गात गात !
अज्ञात पतन,
भीषण प्रपात !

× × ×

मद भूली अब मद-भूल चली
ले सीख विश्व से नई नई,
सरिता धीरे धीरे बहती,
सधती, बचती, कुछ सोच सोच

प्रभातफेरी

अपने पथ पर धीरे बढ़ती,
लख ऊँच-नीच धीरे धीरे
धीरे धीरे निज पग धरती,
सरिता धीरे धीरे बहती !

× × ×

सिखाता है जीवन—
पतन में भर प्रयत्न, मानव !
दुःख में कर सुख का आह्वान
हमारी भूलों में है। ज्ञान,
सीखने में सम्मान ?

पराजय से भय क्यों, मानव !
पराजय में है विजय निदान,
मृत्यु मे है नव-जीवन-दान
अश्रु मे आशा की मुसकान !

[फ़रवरी, १९३३

भिखारिन

आती है दीन भिखारिन,
वह मलिन-वदन, दुर्बल-तन ।
है ताप दग्ध नत चितवन,
चिर-अवहेलित भोला मन,
पद-दलित पतित लघु जीवन,
दर दर पर कर फैलाती
पग पग पर झिड़की खाती
आती है दीन भिखारिन ।

क्या जाने चेतन-आत्मा !
बस उदर, क्षुधा औ' ज्वाला
ईश्वर ने इसे दिए हैं,
सिखलाए ये ही जग ने,
पग पग पर ठोकर खाती
आती है दीन भिखारिन ।

वह निर्धन नादान
जानती है भगवान्—नाम केवल ।
वही अवलम्ब, वही है बल,
वही दो दाने देता है,
उन दानों के सँग जीवन में
पाप, कलुष, व्यभिचार—
हाय क्या क्या भर देता है ?
वह निर्धन नादान
जानती है भगवान्—नाम केवल !
वही अवलम्ब, वही है बल,
उसी के प्रतिपल गुन गाती,
हाय पग पग ठोकर खाती,
चली आती निर्धन !

भिखारिन !!

वेश्या

चेतन आत्मा, कोमल उर,
पावन मानव-तन पाकर,
उदर जानती है केवल !
नैतिक नयनों से इसको
क्यों देख रहे हैं मानव-दल ?
उदर जानती है केवल !

इसे सर्पिणी समझ दिया है
तुमने पृथक् विवर,
हाय उसी मे रहती है यह
जीवन भर निर्बल !
कहते हो, काली नागिन है,
विष ही देखा है केवल,
हैं इसकी मणिया उज्वल !
काँटो की इस कुटिल डाल मे
हैं गुलाब के फूल विमल !
इसको अपनाओ समझाओ,
भूली भली बड़ी निर्बल !
उदर जानती है केवल !

सत्य प्रेम से हो निराश
मैले ताँबे के टुकड़ों पर
बेच रही है रूप विमल !
तुम पिशाच से हँस-हँस लेते
मुट्ठी भर कौड़ी भर देते,
हीरे छीन रहे हो, पापी !
लूट रहे हो तुम निर्बल,
पैसों के पैशाचिक बल से
हर लेते हो रूप विमल !

वेश्या

हो हताश करती है वारि-विलास !
हा, निष्ठुर परिहास !
हा स्वार्थी, अन्यायी मानव !
पैशाचिक सुख के हित तुमने
निर्वासित की वेश्या गृह से !
यह क्या जाने, क्या है मधुर सुहाग,
क्या पति का अनुराग !
(लोलुप लम्पट ही बनते हैं इसके स्वामी !)

पूछो इस भोली बाला से,
क्या पाया है कभी पिता का प्रेमालिङ्गन ?
भाई का प्रिय विमल दुलार,
या बालक का स्वर्गिक चुम्बन ?

गृह सुख से निर्वासित करदी
हाय, मानवी बनी सर्पिणी
यह निष्ठुर अन्याय !
आ, ओ बहन !
अरी सर्पिणि, आ !
तेरे मणिमय मस्तक पर मैं
अङ्कित करदूं निर्धन चुम्बन !
आ, सर्पिणि, आ !
ले भाई का निर्बल निर्मल प्रेमालिङ्गन !!

तू लक्ष्मी है, तू देवी है,
तू नारी पावन !
दे समाज को चाँदी का तन,
रखती है जीवन !

[सितम्बर, १६३२

कंगाल

कृश कंकाल,
नसों के नीले जाल,
अस्थि-पंजर निष्प्राण,
शून्य श्वासों के भार,
यही हैं वे नादान
भटकते भूले बाल,
दीन कंगाल,
नग्न कंकाल !

मुझे आश्चर्य महान
झुके जर्जर निष्प्राण
न जाने कैसे हैं ये स्तम्भ
लदा है जिन पर जग का भार—
विश्व-वैभव का भार !
देखता हूं लघु फूल—
प्रकृति के नन्हें फूल,
झूलती सुख से विह्वल डाल
तितलियों की चिर-चञ्चल माल
और फिर ये कंकाल !
आह, जिन पर स्थित वह सुविशाल
विश्व के धनिकों का प्रासाद,
जहां मणियों की मोहन-माल
विविध-रंग-रञ्जित उज्वल-जाल
झिलमिलाते वे अगणित दीप,
जहां मोती के बन्दनवार,
जहां हीरक के हार,

कंगाल

जहा सोने को सुख ससार,
जहा चाँदी का उज्ज्वल-हास,
झूमता मधु का भार ।
जहा सुख धर्म प्रेम का वास,
जहा ऐश्वर्य-निवास
जहा उत्सव, उत्साह,
जहा रस-रङ्ग-प्रवाह ।
वहीं उस भरी सभा के बीच
देखता हू ईश्वर आसीन ।
झूमता है वैभव सब ओर
झिलमिलाते मदिरा के पात्र,
रक्त-रञ्जित मधु-पात्र ।

नूपुर-किंकिणि-कूजित-गुञ्जित
कनक-लताओं से शोभित अति
जग-वैभव-प्रासाद,
गगन-चुम्बी प्रासाद विशाल ।
सँभाले हैं जिसको कगाल
सिहरते, हिलते से ककाल !
देखता हू विस्तृत साम्राज्य
और ये कृश कंकाल
तड़पते भूखे बाल ।

कौन सुनता है करुण-पुकार ?
किसे रुचता है हाहाकार ?
अरे निर्धन नादान !
जिसे तुम कहते हो 'भगवान्,'
उठते हो सत्ता का भार,
जो बरसाता है जीवन में
रोग-शोक, दुख-दैन्य अपार,
जिसने तुमको उदर दिया है,

और अँगारों का ससार,
उसे सुनाने चले पुकार ?

कौन सुनता है यह चीत्कार ?
झूमता है वैभव सब ओर,
झिलमिलाते मदिरा के पात्र !
कौन सुनता है करुण पुकार ?
किसे रुचता है हाहाकार ?
भूल गया है ईश्वर जग को
पा मादक अधिकार !

[सितम्बर, १९३३

शिव-स्तुति

नाचो, रुद्र, नृत्य प्रलयङ्कर !
नाचो ताण्डव नृत्य भयकर !
डर से डोले डगमग अवनी
सिहरे सागर, काँपे अम्बर !
नाचो, रुद्र, नृत्य प्रलयङ्कर !

नाचो, शिव, इस निर्दय जग पर,
अन्यायी के आडम्बर पर,
ज्वाला के भूधर से नाचो
पहन चिता के चपल लपट-पट
निखिल विश्व हो अवघट मरघट !
नाचो, रुद्र, नृत्य प्रलयङ्कर !
नाचो ताण्डव नृत्य भयङ्कर !

देव ! तुम्हारे क्रोधानल से
फूट पड़े जगती में ज्वाल,
उमड़ पड़े निर्दय लपटों से
शत् शत् शर-से दुर्दम व्याल !
चामुडा-से जीभ निकाले,
रुड-मुंड करते, ठुकराते,
अग-जग मे फैले विकराल,
अम्बर का उर चीर जलादें,
अन्यायी का उर झुलसादे,
देव ! तुम्हारे दुर्दम व्याल !
खड खड हो गिरें धरा पर,
सिहर सिहर श्वासों-सा काँपे,
निखिल विश्व-शासक अन्याय,
गूँजे अन्यायीहर हर हर !

प्रभातफेरी

डर से डोले डगमग अवनी
सिहरे सागर, काँपे अम्बर !
नाचो, रुद्र, नृत्य प्रलयङ्कर !

देव ! तुम्हारे दुर्दम सहचर,
भूत, पिशाच डाकिनी के दल,
दल-बल से उतरे जगती पर,
ख़ूनी हाथों में ले खप्पर,
भग्न विश्व पर नग्न नृत्य कर,
रक्त-मत्त हो गावे हर हर,
गूँजे अन्यायीहर हर हर !
नाचो रुद्र, नृत्य प्रलयङ्कर !

जिन चरणों का कठिन प्रहार
करता संसृति का संहार,
जिनसे आहत हो संसार
करता भीषण हाहाकार,
हरलें जग का अत्याचार !
उन चरणों को ही छू कर फिर
जागें जगती में नव अङ्कुर,
दूर्वादल-सा ही कोमल हो
निर्दय मानव का उर निष्ठुर,
सत्य स्नेह बरसावे अम्बर !
नाचो रुद्र, नृत्य प्रलयङ्कर !

ख़ूनी खप्पर से बह बह कर,
रुद्र ! झरे शोणित के-निर्झर,
होवे जग-जीवन मरु उर्वर,
फूले फूलों मे नव-स्फूर्ति
नव-जाग्रति जागे कलियों में,
उमड़ पड़े विश्वास, स्नेह फिर
मानव की पुलकावलियों में !

शिव-स्तुति

ख़ूनी खप्पर से बह बह कर
रुद्र ! झरें शोणित के निर्झर !
गा अन्यायीहर हर हर हर
शिव शिव शिव अविरत हर हर हर,
रुद्र ! झरे शोणित के निर्झर !

उत्पीड़न से हर उत्पीड़न,
जीवन में भरदें नव-जीवन,
हो जग-जीवन में परिवर्तन,

ख़ूनी खप्पर से बह बह कर,
रुद्र ! झरे शोणित के निर्झर !
डर से डोले डगडग अवनी,
सिहरे सागर काँपे अम्बर !
नाचो रुद्र, नृत्य प्रलयङ्कर !

[अक्तूबर, १९३२

रुद्ररूप भारत

भारत, अधिनायक, गण-नायक, जागे फिर शकर प्रलयकर !

जिनका तनिक पार्श्व-परिवर्त्तन था बिहार-भूकम्प भयंकर,
जिनके रोओं के हिलने से नगर गिरे थर् थर् भय-कातर,
जिनकी साँसो के कम्पन मे,
एक साथ हिले उठे निमिष मे, दिग्दिगन्त, भू, सातों सागर,
एक बार फिर करवट बदले, सुधि ले वे त्रिशूलधारी हर !

फैले लोक लोक मे जिसके हिम-सित अक्षय केश हिमालय,
केश-वासिनी गगा जिसके नित गाती रहती गुण अक्षय,
चन्दन और विभूति रमाए,
शशि औ' नयन-वह्नि सिर धारे, जिनके उर मे जीवाशय लय,
निद्रा त्यागे, जागे क्षण मे मेरे मन के प्रतिपालित हर !

साँपू सिन्धु, पञ्चनद, यमुना, नीलकठ-आभूषण अहिदल,
चरण चूमता नित रत्नाकर, शोभित मुड-माल विन्ध्याचल,
राजस्थानी मरुस्थल खप्पर,
दक्षिण की सरिताए चञ्चल, मुंड माल-शोणित वाहन-दल !
जाग उठे अब शान्त नींद से रुद्र-रूप मे ऐसे शकर !

साँसों से काश्मीर सुवासित, साँसों से कम्पित भू-अम्बर,
स्मिति-मिस-भासित मानसरोवर, वक्र-हास भयभीत चराचर,
सती, शक्ति, भूतों के सहचर,
मरघट-मलय-निवासी शकर, वह्नि-नयन, त्रिनयन, शिव, शशिधर,
फूट पड़े भू-गर्भानल से तोड विश्व का आडम्बर हर !

[जुलाई, १६३४

चिता

भभकती है ज्वाला की माल,
चाटती है अम्बर-उर ज्वाल,
लपकतीं सौ सौ जीभ निकाल,
चाटते जीभ ज्वाल की व्याल,
लपट-पट पहने मृत्यु कराल
कर रही नर्त्तन दे दे ताल!

यही है वह कञ्चन-काया,
जल रही है जो काठ समान!
अरे यह मधुमाया
काल का ही तो कौर निदान!

कभी मा का चन्दा,
प्रेयसी का प्रिय जीवनधन
भाग्य का प्यारा, गौरववान,
धधकती ज्वाला का अब कन!

अधर, पल्लवित कपोल,
मधुर मृदु लोचन लोल,
स्नेह के सुघर हिंडोल,
आज उनका क्या मोल?

केश काले — काले
कभी थे जो मधु-सौरभ-पुञ्ज
जल रहे हैं पल पल!
गात कोमल कोमल,
कोकिला का रसाल का कुञ्ज,
भभक उठता है अब जल जल!

नहीं खोजे मिलते
कहीं भी तो चुम्बन के चिन्ह,
सुनहले जीवन के सुख-चिह्न,
भाग्य के भी वे गौरव-चिह्न,
कीर्त्ति उड़ती धूँए के सङ्ग!

टूटता है कपाल का पट
बिखरते आज अँगारों पर
बुद्धि के, गुण के फूल!

आज सब ओर ज्वाल ही ज्वाल,
बिछे ऊपर-नीचे अङ्गार,
भस्म होगया हाय कन कन,
हुआ स्वाहा सोने का तन!

(२)

बैठने लगी चिता की ज्वाल
डूबती है दिगन्त में शाम!
चिता के अनुरंजित अरमान
प्रात में लेते हैं विश्राम!

कनक-चाँदी का वह ससार
होगया राख-समान असार!
आह, वह वैभव का मधु-भार
भस्म होगया, हुआ निस्सार!

भस्ममय है सारा ससार,
अस्थियों के बिखरे कुछ फूल,
बढ़ रहा है तम अन्धाकार
विश्व में फैला धूम्र-दूकूल!

चिता का हुआ शान्त आवेग
रुका अब 'धाँय' 'धाँय' का वेग!

(२)

धधकती है अब भी,
मृत्यु की साँसें भरती है।
वेग के जीवन का अब अन्त
अँगारों में कुछ जलती है!
धधकती है अब भी,
मृत्यु की साँसें भरती है।

सभी कुछ हुआ राख का ढेर।
ज्वाल का वह भूधर
राख का तस्त-सा भूभर,
गिरा ज्वाला का मेरु!

मृत्यु ही है जीवन का शेष,
यही आकांक्षा का निःशेष,
इसी को कहते हैं अवसान,
यहीं रुकता है जीवन-यान,

हमारा गर्वीला जीवन,
राख के ही कुछ बिखरे कन,
सजाले योगी इनसे तन
शुद्ध करले, रे मानव, मन।

[नवम्बर, १९३२

जरा-चिन्तन

आज यौवन, रस-रग-प्रवाह
आज नव-जीवन, नव-उत्साह,
आज आशा, उल्लास, विकास
सजीले मिलते नयनो म
आज नव विश्वासो की चाह !

कभी जर-जीवन होगा, प्राण !
सुहाएँगे जब दुख के गान,
प्रिये, साँसे ही होंगी भार,
और कञ्चन-तन कारागार,
आह मे ही होगी मुसकान !

आज जो मिलते चार नयन,
खेलता जिनमे आकर्षण,
चमकती जिनमे मधु की प्यास,
कभी सीखेंगे सब को भूल
जरा का जीवन-क्रम-चिन्तन !

बढेगा जग में धुँधलापन,
अपरिचित-से होंगे आनन,
जहा कुछ क्षण ठहरे थे नयन,
जहा अधरों ने किए अनन्त
अचिर क्षण, अङ्कित कर चुम्बन !

आज दूरागत आते पास,
एक हो जाते दो उच्छ्वास,
जरा भी तो आएगी, प्राण !
नेत्र होंगे जब ज्योति-विहीन
मुखाकृति धुँधली दीन उदास !

हो चुकेगा समाप्त सग्राम,
याद आएँगे उनके नाम,

जरा-चिन्तन

कभी जो सच्चे साथी थे,
बिना जिनके जिय-श्री निस्सार
और जय-पर्वत है हिमधाम!

आज तृण-तरु औ' जड़ रज-कन
बना देता जीवन चेतन,
तुम्हारे हँस देने से प्राण!
आज खिल उठते हैं उद्यान,
जला देगा सब को जीवन!

अकिञ्चन है जर-जीवन, प्राण!
आज उमडी पडती मुसकान,
कभी रोएँगे भी ये प्राण,
प्रीति होगी सुख-स्वप्न-समान
और यौवन होगा आख्यान!

खिलखिलाते अब खिलते फूल,
कहा दिखलाई देते शूल?
फूल मुरझा जाएँगे, प्राण!
शूल ही कसकेंगे दिन रात,
जलाएगी यौवन की भूल!

स्वयम् यौवन-पल्लव कर लाल,
जला देगी सब जीवन-ज्वाल!
सबल होंगे नत दुर्बल दीन,
आह उठ भी न सकेंगी, प्राण!
भुजाएं आकाङ्क्षी सुविशाल!

वही, प्रिय, होगा जर-जीवन,
अकिञ्चन दुर्बल जर-जीवन!
कहा तब मधुबन औ' मधुमास?
बनेगा पुलकाकुल यौवन,
झुर्रियों में बन्दी कृश तन!

[दिसम्बर, १६३५

फुहार

झरती नभ से मादक फुहार,
शीतल जल की हलकी फुहार!

भरते नस-नस में उत्तेजन
ये जल के हलके-हलके कन,
बह चली आज उर में उमङ्ग,
झकझोर रहीं जो शिथिल अङ्ग,
भर मानस मे नूतन तरङ्ग,

झरती नभ से मादक फुहार,
शीतल जल की हलकी फुहार!

मृदु मद मद मथर अविरल
झरता नभ से पावस का जल!
मै भूल गया हू जग-जीवन,
जग-जीवन मे जलता चिन्तन,
चिन्तन में जलता अपनापन!

झरती नभ से मादक फुहार,
शीतल जल की हलकी फुहार!

[सितम्बर, १६३३

शूल-फूल

मेरी डाली के शूल-फूल !
सखि, नित्य विकसते जीवन मे
सुख-दुख, दुख-सुख के शूल-फूल !

ये फूल फूल बहलाते मन,
सखि, शूल वेधते जब मृदु तन,
जब भूल फूल मे जाता मन,
ये शूल जगा देते जीवन,

मेरी डाली के शूल-फूल !
चिर-सहचर प्राण सहोदर हैं
जीवन-डाली के शूल-फूल !

मेरे नयनो के अश्रु-हास !
बिम्बित हो, प्रतिबिम्बित होते,
भरते नित जीवन में मिठास !

जब अश्रु ज्योति धुँधली करते,
मैं करता सस्मित जग-दर्शन,
फिर भूल न जाऊं अपनापन,
ये अश्रु मुझे देते चिन्तन !

मेरे नयनो के अश्रु-हास,
ये जग में कितने दूर-दूर,
पर उर में कितने पास-पास !

मेरे नयनों के अश्रु हास
या डाली के ये शूल-फूल !
सखि, नित्य विकसते जीवन मे
सुख-दुख, दुख-सुख के शूल-फूल !

[मई, १९११

आत्मा की कथा

आत्मा तो निरी बालिका थी,
जेठे भाई की बात भूल
नन्हें शिशुओं में जा खेली,
स्वाभाविक ही था उस शिशु को
यदि नन्हें शिशुओं में खेली !

दुख की अँगुली पकड़े आत्मा
जाती थी जग-पथ पर चञ्चल,
लख फूल, वात चल, कनक नवल,
खिल उठे तुरत ही बालक के
कल क्रीड़ामय नव नयन चपल !
जेठे भाई की बात भूल
उन शिशुओं के सँग जा खेली,
स्वाभाविक ही था उस शिशु को
यदि नन्हें शिशुओं मे खेली !

पर फूलों में फीकापन था,
मलयानिल में औ' सोने में
अस्थिर नश्वर आकर्षण था !
मुरझाए मधुर फूल, आई
झंझा उस सुखद समीरण मे,
बन गया कनक का प्रात, हाय
आतप उस सुख के जीवन मे !

अस्थिर नश्वर आकर्षण था,
जग मे वह सुख का जीवन था !

आत्मा की कथा

भोली आत्मा अति दुखित हुई
भ्रमती थी भ्रान्ता-सी वन में,
बन गया कनक का प्रात, हाय
आतप उस सुख के जीवन में !

वह भ्रान्ता श्रान्ता क्लान्तमना
फिर दुख की छाया में आई,
यों शान्ति बालिका आत्मा ने
भाई की गोदी में पाई !

[सितम्बर, १९३२

पापी

यहा कौन है जग मे पापी ?
वह मेरा भोला भाई है,
यह मेरा भूला भाई है,
यहा कौन इस जग मे पापी ?

बालक है थक ही जाते हैं,
पलभर कहीं ठहर जाते है,
क्या डर है, यदि कठिन मार्ग मे
सग न ये शिशु चल पाते हैं ?

कटकमय जग-जीवन-बन है,
मार्ग निरन्तर अगम गहन है,
हे, गम्भीर, ज्ञान के ज्ञाता !
बालक हैं, थक ही जाते हैं !

महाव्रती, हे गहन तपस्वी !
ये लघु शिशु हैं, चञ्चल-मन है,
ज्ञान-शून्य, निर्बोध, सरल-चित्
शिशु ससीम हैं, कोमल-तन है,
देखे फूल कली किसलय-दल,
क्रीड़ातुर हो उठे चपल-चल !
ये क्या जाने जग मिथ्या है,
यह असार जग की माया है,
भ्रमित हुए भूले भृङ्गों-मे
लगे खेलने नव-रङ्गों से !

प्यास लगी, देखी मरीचिका,
भूल गए अपनापन मरु में,
भूख लगी, देखे सुवर्ण-फल,
भूले शिशु सोने के तरु में,

पापी

कौन नहीं हो उठता चञ्चल ?
कौन नहीं भूला जीवन में ?
केवल शिशु ही थे यदि भूले
जीवन-मरु में, तृष्णा-तरु में।
हे इन्द्रियजित्! अहे अचञ्चल!
ये शिशु हैं कुन्दन-से निर्मल!

विकसित कुसुमों की सुस्मिति-मिस
डाली डाली आमन्त्रित कर
शूल चुभाती थी—हा निर्दय—
शिशुओं को यों सम्मोहित कर,
मरु की मिथ्या मृग-मरीचिका
इन्हें भ्रमाती थी जीवन में,
तृष्णा नित फैला सुवर्ण-फल
इन्हें लुभाती थी निज वन में,
वञ्चित भ्रमित दुखित नत दुर्बल,
ये ही हैं वे पापी निर्बल!

कटकमय जग-जीवन-वन है,
मार्ग निरन्तर अगम गहन है,
लो, अब तो निशि भी घिर आई,
निर्जन में छाई अँधियारी,
ज्ञानवान् हे महापुरुष! क्या
छोड़ चलोगे इनको वन में
हे प्रदीप! क्या इन्हें भटकते
ही छोड़ोगे इस जीवन में ?
भूले-भटके हैं शिशु निर्बल!
ये पापी कुन्दन-से निर्मल!

[सितम्बर, १६११

मेरी भावना

कितने भक्तों को देखा है,
मैंने मन्दिर में निशि दिन,
पत्थर की प्रतिमा में करते,
जो ज्यतिर्मय का दर्शन।
क्षुद्र कणों से ही सीखा करते
हैं अविरत योगीजन,
आत्मा-ज्ञान सिखला देते हैं
साधारण से रज के कन!
मैं तुमसे सीखूं, कोमल हो,
पत्थर से तुम कोमलतन।
जड़ रज-कन से कहीं अधिक है
तुममें ज्योतिर्मय जीवन।
कहते हैं सब, 'क्षणभर है सुख,
पलभर है बस मोहक रूप,
क्रुद्ध काल की ज्वाल जला देगी
प्रेयसि का रूप अनूप।'
हा, क्षणभर है रूप विमल,
नश्वर हैं सुख सुखमा के क्षण,
पर क्यों भूल गए हैं क्षण की
क्षमता को सब ज्ञानी-जन?
जब ब्रह्माण्ड दिखा सकते हैं
पथ के अति लघु रज के कन,
क्यों न अनन्त बनेंगे मेरी
प्रेयसि के दर्शन के क्षण?

[सितम्बर, १९३२

यदि

हो गई किसी को यदि विरक्ति
फूलों के कुम्हला जाने से,
तो जीवन के मधुमय फल से
उसको सच्ची आसक्ति न थी !

वैराग्य हुआ यदि प्रेमी को,
बुझ गया लगन का दीपक यदि,
निश्चय भर्तृहरि की भाँति उसे
प्रियतम से सच्ची भक्ति न थी !

यदि मिटने के भय से पील
मैं विस्मृति की झूठी शराब,
आशय होगा, मुझको अपनी
जिज्ञासा की भी शक्ति न थी !

[अक्तूबर, १९३३

लहरी

सरिता की चञ्चल लहरी !
क्यों वृथा चाहती जल पर
अङ्कित करना अपनापन ?
छोटी-सी आकांक्षा में
क्यों सीमित करती जीवन ?
सरिता की चञ्चल लहरी,
अस्थिर है यह अपनापन !

जिसकी शाश्वत आभा से
उल्लसित रजत रज के कन,
जिसके असीम वैभव से
आलोकित रवि, शशि, उडुगन,
उस ज्योतिर्मय जीवन से
सरिता की चञ्चल लहरी !
कर ले ज्योतिर्मय जीवन !

जिसके निस्सीम सदन में
मिलते असीम जीवन-क्षण,
जिसमें अपनापन खोकर
मिलता अनन्त अपनापन
उसके प्रशान्त चरणों पर,
सरिता की चञ्चल लहरी !
तू एक बूँद आँसू बन !

[अक्टूबर, १९२२

याचना

प्रभु! अतुलित तम जगती का
मेरे मानस में भरदो,
घर-घर में, नगर-नगर में
दीपित हों दीपावलिया!

विधना! जग में यदि दुख है,
मुझको दे दो जग का दुख,
ये तो सब सुख से खेलें,
खेलें जग में सुख-निधिया!

इनको दो, प्रभु, मुसकानें,
मङ्गल-गायन की तानें,
मेरी आँखों में भरदो
धुँधली आँसू की लड़िया!

चिन्ता, उर-शूल, यातना—
ये मेरे जीवन को दो,
जग हो शुभ नन्दन-कानन
क्रीड़ित हों स्वर्णिम परिया!

मैं अविरत दुख सहलूँगा,
सहलूँगा सभी व्यथाएं,
जग मे सुख ही सुख भरदो,
हों मेरी दुख की घड़िया!

[नवम्बर, १९३२

मेरा उर

मेरा उर नन्हा नादान
हो अनन्त आकाश समान !

नीलम का सागर अथाह हो,
नभ-प्रसार-सा ही उदार हो,
सूर्य-चन्द्र-सा प्रति-निशि-वासर
ज्योतित हो सत्-ज्ञान !

स्वागत है षट्-ऋतु-परिवर्तन,
स्वागत परिवर्तन का जीवन,
झंझा, मलयपवन, सब स्वागत,
स्वागत सभी समान !

मेरा ऊषा-सस्मित आनन,
सुख-स्वर्णाभायुत उर-आँगन,
आँसू की आँखों से मिल नित
हो संध्या - सा म्लान !

जग-निदाघ-ज्वाला में जल जल,
धुल पावस-धारा में निर्मल,
शुभ्र शरद्-सा स्वच्छ बनालू
धूलिहीन, अम्लान !

मा ! यह नव-कलिका विकसादे,
मेरा उर आकाश बनादे !
फैले हो अनन्त कन कन पर
ज्यों सुख-स्नेह-वितान !

मेरा उर नन्हा नादान
हो अनन्त आकाश समान !

भीख

भाई, मुझे घृणा मत करना
नन्हा-सा है उर सुकुमार!

मुझे नहीं ऐश्वर्य-पिपासा,
नहीं मुझे गौरव-आकांक्षा,
मैं न किसी का प्रतिद्वन्दी हूं,
दुर्बल भाग्य-विजित बन्दी हूं,
मेरा है जीवन निस्सार!

पीड़ा दे मत छलकाओ धन,
निर्धन का धन, आंसू के कन,
मोल चुकाना है जीवन का,
देना है कर इस शाला का,
जाना है जीवन के पार!

आओ, दो दिन के जीवन में
प्रेम-भरे दो बोल बोल लो,
जीवन के विषमय प्याले में
स्नेह सुरस दो बूंद घोल लो,
दो दिन का नश्वर ससार!

भाई, मुझे घृणा मत करना
नन्हा-सा है उर सुकुमार!

[फ़रवरी, १६३३

आह्वान

मेरे पङ्किल अहङ्कार मे
जागो, हे अकलुष पकज।
चपल चित्त के विकल नीर में
जागो, स्थिर तप के नीरज।

अन्तर के अभाव को भरदो,
बन अक्षय आभा साकार,
एक कमल के अमल रूप में,
उमड़ पड़ो, हे अपरम्पार।

क्षुद्र हृदय के क्षीर-सिन्धु मे,
जागो, सरसिज-तन अम्लान,
प्रेम-ज्योतियुत दीप-पुष्प बन,
ज्योतित कर दो जीवन-प्राण।

यही छिपे हो, तुम मुझही में,
मेरे तम-पकिल मन में।
यहीं कहीं चञ्चल लहरों से
खेल रहे हो जीवन में।

आह, आज ही तो सन्ध्या के
मौन अधर कह गए अजान,
बता गए तुमको, मेरे धन,
जगा गए ये सोते प्राण।

मेरे पकिल अहंकार में,
जागो, करुणा के पकज।
जागो मन के चपल नीर में,
सतत शान्त तप के नीरज।

[नवम्बर, १९३५